卐 श्रीसीतारामो विजयतेतराम् 卐

श्रीमद्भगवद्रामानन्दाचार्यकृतानन्दभाष्यभूषिता

केनोपनिषत्

卐 मङ्गलाचरणं 卐

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च । सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माह ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

बदरीफलमपि दत्त्वा शबरी लेभे गतिं यतः परमाम् ।
तमहं देवं वन्देऽनुपधिदयासागरं रामम् ॥१॥

आराध्यं ब्रह्मरुद्रादेर्जगद्धेतुं च मुक्तिदम् ।
दिव्यदेहं गुणाम्भोधिं रामं ब्रह्म समाश्रये ॥२॥

सूत्रवृत्तिकृतौ नत्त्वा व्यासबोधायनौ मुनी ।
श्रीमन्तं राघवानन्दाचार्यगुरुं नमाम्यहम् ॥३॥

कुर्वे गुरुं नमस्कृत्य ज्ञानभक्तिदयानिधिम् ।
केनोपनिषदश्चात्र भाष्यमानन्दसंज्ञकम् ॥४॥

卐 सर्वेश्वरश्रीसीतारामाभ्यां 卐

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत प्रकाश

सीतारामसमारम्भां शुकबोधायनान्विताम् ।
रामानन्दार्यमध्यस्थां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

जिस कृपालु भगवान् श्रीरामजी को शबरी ने बैर के फल को अनन्यभाव से समर्पण करके योगियों से भी दुष्प्राप्य परमगति को प्राप्त कर लिया । एतादृश निरूपाधिक दया के सागर देवाधिदेव सर्वेश्वर श्रीरामजी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥ ब्रह्मा तथा रुद्रादिक देवोंसे आराधित सूक्ष्म स्थूल चराचर जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण तथा मुक्ति देनेवाले लोकोत्तर दिव्य विग्रह वाले अनन्त कल्याण गुणों के समुद्र भगवान् श्रीरामरूप ब्रह्म का आश्रय लेता हूँ, (अर्थात् नमस्कार करता हूँ) ॥२॥ सूत्र कार श्रीव्यासमुनि तथा वृत्तिकार श्रीबोधायनजी को नमस्कार करके श्रीमान् राघवानन्दाचार्यजी गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥ ज्ञान भक्ति और दया के सागर गुरु महाराज जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजी को वन्दन दण्डवत प्रणाम करके केनोपनिषत् का आनन्द संज्ञक भाष्य बनाता हूँ ॥४॥

सर्वस्यैव जनस्य मनः प्रभृतीनि करणानि अनीप्सितेऽपि वस्तुनि प्रवर्तमानानि ईप्सितेऽपि चाप्रवर्तमानानि भवन्ति सा चैषा प्रवृत्तिः प्रवर्तकपुरुषमन्तरेण न संभवति कुठारादिषु तथा दर्शनात् । अतः प्रवर्तकचेतनविशेषप्रश्नमुखेन ब्रह्मप्रश्नमुपक्षिपति कश्चिद् ब्रह्मजिज्ञासुः शिष्यः-

ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः । केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥१॥

卐 श्रीरामाय नमः 卐

आनन्दभाष्यकार जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्याय नमः

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीता लघुदीपिका

सीतारामसमारम्भां शुकबोधायनान्विताम् ।
रामानन्दार्यमध्यस्थां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

किससे प्रेरित होकर अच्छे या बूरे विषयों के प्रति मन लग जाता है ? एवं किससे प्रेरित होकर पंच प्राणों में मुख्य प्राण अपने कार्य में संलग्न होता है तथा किससे क्रिया युक्त होकर वेद वाणी या अन्य वाणी को जनसाधारण वोलते हैं । हे आचार्यजी ? निश्चय रूपसे कौन देव चक्षु तथा श्रोत्र को उन उन के कार्यों में लगाता है ? ॥१॥

मनः केन किंसंज्ञकेन प्रवर्तकविशेषेण प्रेषितं प्रेरितं सत् इषितम् इष्टम् । अत्र इडागमः छान्दसः । विषयं प्रति पतति गच्छति । इषितमित्यनिष्टस्याप्युपलक्षणम्, अनिष्टेऽपि विषये मनसः प्रवृत्तिदर्शनात् । अचेतनत्वात् स्वयमस्य प्रवृत्तिर्न सम्भवति । जीव एव प्रेरक इत्यपि न युक्तम् अनिष्टेपि प्रवृत्तिदर्शनात् तस्मात् जीवकृतनिग्रहमवहेलयतोऽस्य कश्चिदपर एव प्रवलः प्रेरको भवेत् सः क इति प्रश्नाशयः । प्रथमः प्राणः पञ्चसु प्राणेषु मुख्यः हृदयस्थानः प्राणः केन देवेन युक्तः प्रवर्तितः सन् प्रैति प्रगच्छति स्वकार्यं प्रति, शरीरधारणरूपं स्वव्यापारं करोतीत्यर्थः 'यथाऽहमेवैतत् पञ्चधात्मानं विभज्यैतद् बाणमवष्टभ्य धारयामि' (प्र. २।३) इतिश्रुत्या शरीरधारणरूपजीवनमेव मुख्यप्राणस्य प्रधानोव्यापारः इत्यवगमात् । केन देवेन इषितां प्रवर्तिताम् इमां श्रूयमाणां लौकिकीं वैदिकीञ्च वाचं शब्दस्वरूपां वदन्ति जीवा इत्यध्याहार्यम् । यद्वा जीवाः प्रेरिता इति पदद्वयमध्याहार्य केन प्रेरिता जीवाः इषिताम् इष्टाम् उपलक्षणाम् अनिष्टाञ्च वाचं वदन्ति इति व्याख्येयम् । एतेन जीवस्यापि तत्पारवश्यमुक्तं भवति । उ शब्दः सम्बोधनार्थः । अतः भो आचार्य ! कः किमभिधानः देवः द्योतमानः पुरुषविशेषः । चक्षुः

श्रोत्रम् चक्षुश्च श्रोत्रं च क्षुंश्रोत्रम् प्राण्यङ्गत्वादेकवद् भावः । युनक्ति दर्शनश्रवणात्मके व्यापारे योजयति । चक्षुः श्रोत्रमिति घ्राणादीनामितरकरणानामप्युपलक्षणम् । अतः सर्वेषां करणानां जीवस्य च प्रेरयिता यः पुरुषविशेषो देवः तं वदेतिभावः ॥१॥

सब व्यक्तियों का मन प्रभृतिक जो करण हैं वे ज्ञान का साधन हैं । वह अनभिलषित वस्तुओं में भी प्रवर्तमान होता है । तथा क्वचित् ईप्सित अभिलषित वस्तुओं में भी प्रवर्तमान नहीं होता है । वह यह लोगों की प्रवृत्ति निवृत्ति प्रवर्तक पुरुष के बिना असम्भवित है क्योंकि छिदारूप कार्य का करण जो कुठारादिक उसमें ऐसा देखने में आता है । अतः कोई जिज्ञासु शिष्य प्रवर्तक पुरुष के प्रश्न द्वारा ब्रह्म श्रीरामविषयक प्रश्न का उत्थान करता है-'**केनेषितम्**' इति । यह संकल्प विकल्प वृत्तिवाला मन अन्तःकरण किससे किस प्रवर्तक विशेष से प्रेषित प्रेरित होता हुआ मन इष्ट अभिलषित-ईषित में जो इट् का आगम है वह छान्दस होने से है । विषय स्वाभिमत वस्तु के प्रति पतित होता है अर्थात् जाता है । ईषित यह उपलक्षण है, अनभिलषित पदार्थ का भी क्योंकि इष्ट के समान अनिष्ट वस्तु के प्रति भी मन की प्रवृत्ति देखने में आती है । अचेतन होने से

स्वयं तो मन की प्रवृति हो नहीं सकती है। जीव मन का प्रेरक होगा यह भी नहीं कह सकते हैं क्योंकि इष्ट के समान अनिष्ट में भी प्रवृत्ति होती है। स्वतन्त्र जीव को अनिष्ट में प्रवृत्त नहीं होना चाहिये। अतः जीव के निग्रह का अवहेलन करते हुए इस मन का अवश्य कोई प्रबल प्रवर्तक होना चाहिये। वह प्रबल प्रवर्तक कौन है यह प्रश्न का आशय है। **'प्रथमः प्राणः'** इति। पञ्च संख्यक प्राणों में से मुख्य हृदयस्थान स्थित जो मुख्य प्राण वह किस देव से युक्त प्रवर्तित हो करके स्वकीय कार्य के प्रति जाता है अर्थात् शरीरधारण लक्षणरूप स्वव्यापार को करता है। 'मैं ही अपने स्वरूप को पाँच प्रकार से विभक्त करके इस बाण को अर्थात् इस शरीर को पकड करके धारण करता हूँ' इस श्रुति से शरीरधारणरूप जीवन ही मुख्य प्राण का प्रधान व्यापार है ऐसा जाना जाता है, **'केनेति'** किस देव से ईषित प्रवर्तित हो करके इस श्रूयमाण लौकिक और वैदिक शब्दरूप वाणी को जीव बोलता है। यहां जीव का अध्याहार करना चाहिये। अथवा **'जीवाः प्रेरितारः'** इन दो पदों का अध्याहार करना चाहिये। किससे प्रेरित हो करके जीव इष्ट तथा अनिष्ट वाणी बोलता है ऐसी व्याख्या करनी चाहिये। इससे जीव को भी परपुरुष

पराधीनत्व बतलाया गया । 'क उ' में जो उ शब्द है वह सम्बोधनार्थक है । अतः हे आचार्य ? कौन नाम वाला देव द्योतमान पुरुष विशेष; चक्षु श्रोत्र को । यहां प्राणी के अङ्ग होने के कारण एकवद्भाव हुआ है । योजित करता है अर्थात् चक्षु श्रोत्र को अपने अपने व्यापार में प्रेरित करता है वह देव कौन है । चक्षु श्रोत्र घ्राणादिक इन्द्रियों का भी उपलक्षण है । इसलिये सब करणों का तथा जीव का प्रेरयिता कौन देव है उसे आप हमें कहिये यह फलितार्थ हुआ ॥१॥

एवं पृष्ट आचार्यः प्रतिवदति-

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥२॥

सर्व नियन्ता जो परमेश्वर श्रीरामजी हैं वे ही मन का मन प्राण का प्राण एवं वाणी के भी वाणी हैं और श्रोत्र का श्रोत्र हैं तथा निश्चित रूपसे चक्षु के चक्षु भी वे ही हैं वे ही सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी इन सभी इन्द्रियादि के प्रेरक हैं अतः सभी को प्रेरणा प्रदाता श्रीरामजी के स्वरूप को जानने वाले धीर-विवेकी पुरुष ही इस भौतिक शरीर से छूटकर अर्चिरादि मार्ग से श्रीसाकेतधाम प्राप्तकर अमृत-सायुज्यमुक्ति प्राप्त कर जन्म तथा मृत्यु से रहित हो जाता है ॥२॥

यत् श्रोत्रस्य श्रोत्रम्, मनसो मनः वाचो वाचम् प्राणस्य प्राणः चक्षुषः चक्षुः ह त्वया पृष्टः प्रवर्तको

देवः स उ इत्यन्वयः । यत् यः श्रोत्रस्य श्रोतुः जीवस्य शब्दसाक्षात्कारे उपकारकमिन्द्रियं श्रोत्रं तस्य श्रोत्रम् शब्दभासकत्वशक्तिदाता परमपुरुषाहितशक्तिकोऽस्यैव श्रोत्रेन्द्रियस्य शब्दभासने समर्थत्वात् अतः सः श्रोत्रस्य श्रोत्रमित्युच्यते । मनसः सुखदुःखाद्यान्तरवस्तूपलम्भे साधनभूतमिन्द्रियं मनः तस्यापि मनः मननोपयोगि शक्तिदाता नहि परमात्मना अनाहितशक्तिकं मनः जीवस्य सुखादिसाक्षात्कारे साधनभावं भजेत् । अतः मनसो मन इत्युच्यते परमपुरुषः । वाचो वाचम् जीवस्य शब्दयोगात्मकव्यापारे साधनमिन्द्रियं वाक् तस्य वागिन्द्रियस्य वाक् छान्दसप्रथमार्थे द्वितीया । शब्दोच्चारणशक्तिप्रदः, परमपुरुषप्राप्तशक्तिमदेव वागिन्द्रियं जीवस्य शब्दप्रयोगे साधनं भवति । अतः वाचो वाक् इत्युक्तः । प्राणस्य प्राणः शरीरधारणरूपव्यापारवान् शरीरान्तःसञ्चारी वायुः प्राणः तस्य प्राणः जीवन शक्तिप्रदः, परमपुरुषाहितजीवनशक्तिक एव जीवनं करोति तस्मात् प्राणस्य प्राण इति कथ्यते । चक्षुषः चक्षुः रूपादिसाक्षात्कारे जीवस्य उपकारकमिन्द्रियं चक्षुः तस्यापि चक्षुषः परमात्मा दर्शनप्रदत्वात् परमात्मलब्धशक्तिकस्यैव चक्षुः रूपादिसाक्षात्कारे साधनत्वात् । अतः श्रोत्रादीनां तत्तच्छक्तिप्रदो यो देवः

प्रसिद्धः स एव मनआदीनां प्रेरयितृत्वेन त्वया पृष्टो देव इति बुध्यस्व । 'यो मनोऽन्तरोयमयति' 'वाचमन्तरोयमयति' 'श्रोत्रमन्तरोयमयति' 'चक्षुरन्तरोयमयति' 'प्राणमन्तरोयमयति' इत्याद्याभिः श्रुतिभिरपि परमपुरुषस्य सर्वेश्वरस्य मनः प्रभृतिनियामकत्वं सिध्यति । श्रोत्रादीनां प्रवर्तकः सर्वेश्वर एवेत्येवं भूतस्य ज्ञानस्य फलं प्रदर्शयति आचार्यः अतिमुच्य धीरा इति, धीराः परमपुरुष एव मनः प्रभृतिप्रवर्तकः इति ज्ञानवन्तो जना अस्मात् दृश्यमानात् लोकात् देहात् प्रेत्य निष्क्रम्य मूर्धन्यया शताधिकया नाड्या निर्गत्य अर्चिरादिमार्गेण गत्वा अतिमुच्य लिङ्गशरीरं परित्यज्य अमृताः मुक्ताः भवन्ति । यद्वा अतिमुच्य परमात्मनः सर्वान्तर्यामित्व ज्ञानेन स्वातन्त्र्यभ्रमं परित्यज्य परमेश्वर एव सर्वं कारयतीति चिन्तयन्तः अस्मात् लोकात् मृत्युलोकात् प्रेत्य अर्चिरादिपथा देशविशेषं भगवद्धामरूपं गत्वा अमृता भवन्ति, मुक्ताः भवन्तीत्यर्थः । एतेन मुक्तानां नान्यत्रलोके गमनं भवति, किन्तु ब्रह्मभाव एव भवतीति मतं व्युदस्तं भवति मुक्तिस्थानस्य भगवद्धामरूपलोकान्तरस्य प्रतीयमानत्वात् ॥२॥

इसप्रकार जब आचार्य को शिष्य ने प्रवर्तक के विषय में प्रश्न किया तब आचार्य कहते हैं-'श्रोत्रस्य

श्रोत्रमित्यादि' जो श्रोत्र का श्रोत्र है, मन का भी मन है, वाणी की वाणी है, चक्षु का चक्षु है तुमने जिस प्रवर्तक देव को पूछा है वह ऐसा है, इसप्रकार अन्वय करना चाहिये। जो श्रोत्र का श्रवण कर्ता जो जीव है उसे शब्द के साक्षात्कार करने में उपकारक जो श्रोत्रेन्द्रिय है उस श्रोत्र का भी वह देव श्रोत्र है। शब्द में जो भासकता शक्ति देनेवाला है क्योंकि परमपुरुष से प्राप्त है शक्ति जिसे एतादृश श्रोत्रेन्द्रिय ही शब्द को भासित करने में समर्थ होता है। इसलिये वह परमपुरुष श्रोत्र का भी श्रोत्र है ऐसा कहा जाता है। तथा जो मन का भी मन है, सुखदुःखादिक जो आन्तर पदार्थ हैं उनके उपलम्भ साक्षात्कार में साधनभूत इन्द्रिय मन है तादृश मन का भी वह परमपुरुष मन है। अर्थात् मनन की उपयोगी शक्ति देनेवाले परमात्मा ही हैं जिस मन को परमात्मा से शक्ति प्राप्त नहीं है एतादृश मन जीव के सुखदुःखादि के साक्षात्कार करने में साधनभाव को प्राप्त नहीं करता है। इसलिये वह परमपुरुष मन का भी मन है अर्थात् मनन शक्ति का दाता है-**'वाचोहवाचमिति'** जो वाणी की भी वाणी है। जीव के शब्द प्रयोगरूप व्यापार करने में साधनीभूत इन्द्रिय को कहते हैं वाक्। उस वागिन्द्रिय का भी वाक् है। वाचं में द्वितीया है वह प्रथमा के अर्थ

में है छान्दसत्वात् द्वितीया का प्रयोग किया गया हैं। वाणी का भी वाक् है अर्थात् शब्दोच्चारण शक्ति देनेवाला है परपुरुष से शक्ति को प्राप्त करके ही वागिन्द्रिय जीव के शब्द प्रयोग में साधन होता है। अतः परमपुरुष वाणी की भी वाणी कहे जाते हैं। **'प्राणस्य प्राण'** इति। प्राण का भी प्राण है। शरीर धारणरूप व्यापार वाला शरीर के अन्तः संचरणशील वायु को प्राण कहते हैं तादृश प्राण का भी प्राण है जीवन शक्ति देनेवाले हैं। परमपुरुष से प्रदत्त जीवन शक्ति वाला प्राण ही जीव को धारण करता है अतः परमपुरुष प्राण के भी प्राण कहे जाते हैं। **'चक्षुषश्चक्षुरिति'** चक्षु के भी चक्षु हैं। जीव के रूपादि साक्षात्कार करने में उपकारक इन्द्रिय चक्षु है, उस चक्षु को दर्शन शक्ति देनेवाले परमात्मा हैं, परमात्मा से लब्ध शक्तिक चक्षु को ही रूपरूपी द्रव्यादि साक्षात्कार करने में सामर्थ्य होने से वह चक्षुरादिक साधन होता है। अतः श्रोत्रादिक इन्द्रियादिक को तत्तद्वस्तु समुत्पादक शक्ति देनेवाले जो देव प्रसिद्ध हैं वेही देव मन आदि के प्रेरयिता हैं जिसके विषय में तुमने पूछा है ऐसा समझो।

'जो मन का नियन्त्रण करते हैं मन के अभ्यन्तर में

अवस्थित जिनका मन शरीर है जिनको मन नहीं जान सकता है' 'जो वाणी के अन्दर में रहकर जो वाणी को नियन्त्रित करते हैं' जो श्रोत्र के अन्दर में रहकर श्रोत्र का नियमन करते हैं' 'जो चक्षु के अन्दर में रहकर चक्षु को नियन्त्रित करते हैं' 'जो प्राण के अन्दर में रह करके प्राण को नियन्त्रित करते हैं' इत्यादि बृहदारण्यकीय श्रुतियों से भी मन आदि के नियामकत्व परमपुरुष सर्वेश्वर श्रीरामजी में ही सिद्ध होता है। श्रोत्रादि इन्द्रियों का प्रवर्तक परमपुरुष ही हैं एतादृश ज्ञान के फल को बतलाते हैं आचार्य-**'अतिमुच्यधीरा'** इत्यादि से। जो धीर है अर्थात् परमपुरुष ही मन आदि करणों का प्रवर्तक हैं इत्याकारक ज्ञानवान् जो अधिकारी लोग हैं वे दृश्यमान एतल्लोकस्थित देह से प्रेत्य निष्क्रमण करके अर्थात् मस्तक स्थित सुषुम्ना नाडी द्वारा निकल करके अर्चिरादिमार्ग से जा करके तथा लिङ्ग शरीर का परित्याग करके अमृत-मुक्त हो जाते हैं। अथवा परमात्मा सर्वान्तर्यामी हैं ऐसा जानने से जीव में स्वातन्त्र्य भ्रम को छोड करके परमेश्वर ही सब कराते हैं इसप्रकार से चिन्तन करते हुए इस मृत्युलोक से मर करके अर्चिरादिमार्ग द्वारा भगवद्धामरूप देश विशेष दिव्यधाम श्रीसाकेतलोक को प्राप्त करके अमृत हो जाते

हैं अर्थात् मुक्त हो जाते हैं। इससे मुक्त पुरुष को किसी अन्यत्र लोकान्तर में गमन नहीं होता है किन्तु ब्रह्मरूप ही हो जाते हैं एतादृश जो अन्य का मत है वह इससे खण्डित हो जाता है। क्योंकि भगवद्धामरूप लोकान्तर ही मोक्ष स्थान है ऐसा प्रतीयमान होता है। अतः श्रीसाकेत ही मोक्षस्थान है तदतिरिक्त और कोई नहीं ॥२॥

मनः प्रभृतीनां कः प्रेरक इति प्रश्नस्योत्तरं श्रोत्रस्य श्रोत्रमित्यादिना दत्तमपि न सन्तोषमावहति स्पष्टतया तत्स्वरूपस्यानुपदेशात्। अतः सुस्पष्टं तत्स्वरूपमुपदिशेति शिष्याकाङ्क्षायामाह-

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्याद्न्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रूम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ॥३॥

उस सर्वेश्वर श्रीरामजी के ज्ञान हेतु वहां तक चक्षुः नहीं पहूँच सकती है एवं वाणी भी पूर्ण वर्णन नहीं कर सकती है तथैव मन भी पूर्ण रूपसे मनन नहीं कर सकता है तो वह परब्रह्म श्रीरामजी ऐसे ही हैं कैसे बताया जाय यह स्वयं हम नहीं जानते हैं या अन्यों से सुनकर भी यथार्थ रूपसे जान पाते हैं क्योंकि वह परमेश्वर श्रीरामजी अपने से जाने हुये तत्वों से एवं नहीं जाने हुये तत्त्वों से भी अधिक-विशिष्ट हैं या निश्चय रूपसे अलग ही तत्त्व है ऐसा हम पूर्ववर्ती तत्त्ववेत्ता आचार्यों से परम्परा से सुनते आये हैं उन्हीं आचार्य प्रवरों ने हमें उस

सर्वेश्वर परिपूर्ण ब्रह्म श्रीराम सम्बन्धी तत्त्व को अच्छीतरह से समझाया है ॥३॥

तत्र मनः प्राणादीनां प्रेरके परमपुरुषे चक्षुः न गच्छति न स्वव्यापारंकरोति, चक्षुःपदं प्रत्यक्षप्रमाण मात्रोपलक्षणम्, प्रत्यक्षप्रमाणं तत्र नोपतिष्ठत इत्यर्थः। अतीन्द्रियो हि सर्वेश्वरः, अतः प्रत्यक्षप्रमाणागोचर इति भावः। न वाग् गच्छति, वाक् पदेन वागिन्द्रियोच्चार्यशब्दप्रमाणं लक्ष्यते तादृशः शब्दोऽपि सर्वेश्वरं बोधयितुमसमर्थः प्रत्यक्षोपजीविनः शब्दप्रमाणस्य अतीन्द्रिये वस्तुनि प्रसरासम्भवात् इत्यर्थः। नो मनः अत्र मनः शब्देन मनोव्यापारप्रधानमनुमानं प्रमाणं लक्ष्यते तदनुमानमपि प्रत्यक्षमुपजीवति। अतः प्रत्यक्षातीते वस्तुनि अनुमानस्यापि नास्त्यवसरः। न मनः तत्र गच्छतीत्यन्वयः। नन्वेतावताऽपि सुस्पष्टमुपदिष्टो भवति सर्वेश्वर इत्यत्र आह न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात् इदं दृश्यमानं वस्तु घटपटादिकं यथा येन प्रकारेण कम्बुग्रीवादिमत्त्वादिना अनुशिष्यात् उपदिश्येत् तादृशप्रकारं कमपि परमपुरुषे न विद्मः, घटादिवत् केनापिप्रकारेण सुस्पष्टोपदेशानर्ह एव परमात्माऽतो वस्तुस्वभाव एतादृशः नात्र उपदेशकस्य दोष इत्यवबुध्य सन्तोषमाधेहि। ननु विचित्रेऽत्र जगति

किमपि तादृशवस्तु भवेत् यत् उदाहृत्य विशेषतः उपदिशतु भवान् सर्वेश्वरस्वरूपमित्यत्राह न विजानीमः। लौकिकेषु वस्तुषु लौकिका एव प्रकाराः भवन्ति नहि तेषु एकोपि प्रकारः परमात्मनि येन प्रकारेण ते विशेषेण जानीयाम। अतः विशेषेण न जानीमो वयमिति कथं विशेषेण उपदिशाम। साकल्येन तस्योपदेशः साकल्येन बोधो न संभवति। अतः एतावतैव सन्तोष्टव्यमिति गुरोरभिप्रायः। ननु लौकिकार्थवत्स्पष्टमुपदेश्यत्वं नास्ति यदि तर्हि कीदृशं तत्स्वरूपमित्यत्राह अन्यदेव तद्विदितात् तत्परमात्मस्वरूपं विदितात् ज्ञान गोचरवस्तुनः अन्यदेव भिन्नमेव कात्स्न्येंन विदित वस्तुकोटौ नास्य अन्तर्भाव इति भावः। ननु एवमविदितत्वे खपुष्पादिवत्स्यात् परमपुरुष इत्यत्राह- अथोऽविदितादधि अविदितात् खपुष्पादितः अधि अन्यदेव परमात्मस्वरूपम्। कात्स्न्येंन अविदितोऽपि सर्वेश्वरः न खपुष्पादिवत् सर्वथा अविदितः उपनिषत् प्रमाणवेद्यत्वात् खपुष्पादिकं केनापि प्रमाणेन न वेद्यते इति भेद इतिभावः। इति एवं प्रकारवचनं शूश्रूम श्रुतवन्तो वयम्। कुतः इत्याकांक्षयामाह पूर्वेषाम् पूर्वेभ्यः आचार्येभ्यः इत्यर्थः। इह पञ्चम्यर्थे षष्ठी। केभ्यः पूर्वेभ्य इत्यत्राह। ये पूर्वाचार्याः नः अस्माकं

कृते तत् परमपुरुषस्वरूपं व्याचचक्षिरे विविच्य उपदिष्टवन्तः तेभ्यः श्रुतवन्तो वयमित्यर्थः। पूर्वकालीना :आचार्याः सम्यक् भगवत्स्वरूपमालोच्य अस्मान्प्रति ईदृशमेव वचनमुक्तवन्तः, यत् परमात्मस्वरूपं साकल्येन उपदेशयोग्यं साकल्येन ज्ञानयोग्यं वा नास्त्येव। अतः विदितेभ्यः अविदितेभ्यश्च भिन्नं वेदशिरस्समुदायसमुपपादितमेव वेद्यं भवतीतिभावः। यद्वा अविदितशब्देन अचिदंशः उच्यते, विदितशब्देन तु चिदंशः ताभ्यां चिदचिद्भ्यामन्यः एव सर्वेश्वर तदन्तर्यामीति व्याख्येयम् ॥३॥

शिष्य ने प्रश्न किया कि हे गुरो ? मन आदि करण का प्रेरक कौन है ? इसके उत्तर में आचार्य ने कहा कि-जो श्रोत्र का भी श्रोत्र है, ऐसा उत्तर दिया, परन्तु इस उत्तर से शिष्य को सन्तोष नहीं हुआ क्योंकि स्पष्टरूप से उत्तर नहीं हुआ। अतः शिष्य पुनः पूछता है कि सुस्पष्ट रूपसे प्रवर्तक उस आत्मा के स्वरूप का उपदेश दीजिये। इसप्रकार शिष्य की आकांक्षा के उत्तर में कहते हैं-'न तत्र चक्षुरित्यादि' मन प्रभृतिक करणों के प्रेरक जो परमपुरुष उसमें चक्षु का गमन नहीं होता है अर्थात् चक्षुरादिक करण स्वकीय स्वकीय व्यापार को नहीं कर सकते हैं क्योंकि **'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्य**

यम्' इत्यादि श्रुतियों से परमात्मा में रूपादिकगुणों का निषेध किया गया है और चक्षुरादिक करण रूपादिक गुण की सहायता से ही प्रत्यक्ष करने में समर्थ होते हैं। यहां चक्षु पद प्रत्यक्ष प्रमाण मात्र का उपलक्षक है। अतः परमात्मा का ग्राहक प्रमाण नहीं होता है। भगवान् परमेश्वर अतीन्द्रिय हैं इसलिये प्रत्यक्षप्रमाण के विषय नहीं होते हैं। परमात्मा के ग्रहण करने में वाणी भी समर्थ नहीं है-**'न वाग्गच्छति'** यहां वाक् पद से वागिन्द्रिय से उच्चार्यमाण शब्द प्रमाण उपलक्षित होता है। एतादृश शब्द प्रमाण भी सर्वेश्वर परमपुरुष श्रीराम जी को समझाने में समर्थ नहीं हैं, क्योंकि प्रत्यक्षोपजीवी जो शब्दप्रमाण है उसे अतीन्द्रिय वस्तु में प्राप्ति असम्भवित है। **'नो मनः'** यहां **मनः** पद से मन का व्यापार है प्रधान जिसमें एतादृश अनुमान प्रमाण लक्षित होता है। यह अनुमान भी प्रत्यक्षोपजीवी है। अतः प्रत्यक्षातीत वस्तु में अनुमान को भी अवसर प्राप्त नहीं होता है। वह मन परमात्मा में नहीं जाता है अर्थात् मनोगम्य परमात्मा नहीं हैं-**'यतो वाचोनिवर्तन्तेऽप्राप्य मनसा सह'** ऐसा श्रुति कहती है। अतः मनोगम्यत्व परमेश्वर में नहीं है।

इतना कहने पर भी सुस्पष्ट रूपसे तो परमेश्वर

उपदिश्यमान नहीं होते हैं इस जिज्ञासा में कहते हैं-**'न विद्यो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादिति'** ये परिदृश्य मान जो घट पटादिक पदार्थ हैं वे जैसे कम्बुग्रीवादिमान् होता है। घटादिक वस्तुओं में जिस तरह घटत्वादिक प्रकार रहता है जिसके बल पर घटादिक उपदिश्यमान होता है एतादृश कोई भी प्रकार को परमपुरुष में नहीं जानता हूँ। अतः घटादि की तरह किसी भी प्रकार से सुस्पष्ट रूपसे परमात्मा उपदेश के योग्य नहीं हैं क्योंकि वस्तु स्वभाव ऐसा है, इसमें उपदेशक का कोई दोष नहीं है, शिष्य ? ऐसा जान करके सन्तोष करो। हे गुरो ? घटादि के समान प्रकार के अभाव से भले ही सुस्पष्ट रूपसे परमेश्वर का उपदेश न हो सके परन्तु यह संसार तो विचित्र है तो इसमें कोई एतादृश पदार्थ हो उसे उदाहृत करके विशेष रूपसे भगवान् सर्वेश्वर श्रीराम के स्वरूप का उपदेश हमें दीजिये इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-**'न विजानीमः'** इति। जो लौकिक वस्तु है उसमें लौकिक ही प्रकार विशेषण भी होता है उन लौकिक निष्ठ प्रकारों में से एक भी कोई प्रकार परमात्मा में नहीं है जिसप्रकार अर्थात् विशेषण के द्वारा परमात्मा जाना जा सकता है। अतः विशेष रूपसे हमलोग नहीं जानते हैं। तब विशेष रूपसे परमात्मा का उपदेश किस

प्रकार से किया जा सकता है। अतः इतने से ही संतोष करना चाहिये।

यदि लौकिक वस्तु की तरह स्पष्ट रूप्से परमात्मा उपदेश करने के योग्य नहीं हैं तब उस परमात्मा का स्वरूप किस प्रकार का है इस जिज्ञासा के उत्तर में श्रुति कहती है-**'अन्यदेवतद्विदितादित्यादि'** परमात्मा का जो स्वरूप है वह विदित अर्थात् ज्ञान का विषयभूत जो पदार्थ तादृश पदार्थ स्वरूप से परमात्मा का स्वरूप अतिभिन्न है। विदित वस्तु कोटि में इस परमात्मा का अन्तर्भाव नहीं है। यदि परमात्मा ज्ञान का विषय नहीं है तब तो परमात्मा आकाश कुसुम के समान हो जायगा इस जिज्ञासा के उत्तर में श्रुति कहती है-**'अथोऽविदितादधि'** अविदित जो आकाश कुसुमादिक उससे भी भिन्न परमात्म स्वरूप है। यद्यपि सम्पूर्ण रूपसे परमात्मा अविदित रूप होने पर भी गमन कुसुम के समान सर्वथा अविदित नहीं है। किन्तु उपनिषत् प्रमाणगम्य है अतः गगन कुसुमायमान नहीं होता है। गगन कुसुम तो किसी प्रमाण का विषय नहीं है अतः वह असत् है।

इसप्रकार का वचन हमलोगों ने सुना है। किससे आपने सुना इस जिज्ञासा के उत्तर में श्रुति कहती है

'पूर्वेषामिति' पूर्व पूर्व आचार्यों से सुना है । यहां पञ्चमी विभक्ति के अर्थ में षष्ठी विभक्ति है । किससे आपने सुना ? उत्तर में कहते हैं-'ये न' इत्यादि । जो पूर्वाचार्य ने हमलोगों के लिये उस परमपुरुष के स्वरूप का उपदेश दिया, उनसे मैंने सुना । पूर्वकालिक आचार्य लोगों ने परमपुरुष के स्वरूप का आलोचन करके हम लोगों से कहा । जो कि परमपुरुष का स्वरूप सम्पूर्ण रूपसे उपदेश योग्य नहीं है । अथवा अविदित शब्द से अचिदंश का प्रतिपादन होता है तथा विदित शब्द से चिदंश का प्रतिपादन होता है । तो उन चिदचित् से भिन्न सर्वेश्वर अन्तर्यामी श्रीरामजी हैं । इसप्रकार व्याख्यान करना चाहिये ।।३।।

मनः प्रभृतिप्रेरकं परंब्रह्म श्रुतिभिरपि साकल्येन समुपदेष्टुं न शक्यतेऽतः साकल्येन समुपदेशाय नाग्रहः सेवनीय इति भावेन गुरुरुपदिशति-

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।४।।

जिस परेश श्रीरामजी का वेद वाणी से भी सम्पूर्ण रूपसे वर्णन नहीं हो पाया है पर जिनकी प्रेरणा से जीववर्ग वाणी का व्यवहार करता है तुम उसी सर्वप्रेरक श्रीरामजी को ही परब्रह्म जानो जो तुम या अन्य जन इस स्थावर या जंगम की उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं है ।।४।।

यत् मनः प्राणादिप्रवर्तकं परंब्रह्म वाचा अनादि निधनया वेदवाण्या अनभ्युदितं साकल्येन न प्रकाशितम् । कस्तत्र प्रसरः इतरवाण्या इतिभावः । येन च परब्रह्मणा प्रवर्तिता सत्येव वाक् अभ्युद्यते समुच्चार्यते पुरुषैरितिशेषः । तदेव ब्रह्म मनः प्रभृतिप्रेरकमिति त्वं ब्रह्मजिज्ञासुः शिष्यः विद्धि जानीहि । यदिदं दृश्यमानं जगत् चिदचित्स्वरूपम् उपासते कामाकुलितमनस जीवा इति शेषः । तदिदं दृश्यमानं चिदचित्स्वरूपं जगत् तु न ब्रह्म इति बुध्यस्वेतिभावः ॥४॥

मन प्रभृतिक इन्द्रियों का प्रेरक जो परब्रह्म है उसका संपूर्ण रूपसे श्रुति भी उपदेश नहीं करती है अतः साकल्येन ब्रह्मोपदेश के लिये अत्याग्रह नहीं करना चाहिये । इसप्रकार सुहृद्भाव से गुरु शिष्य को कहते हैं–**'यद्वाचा'** इत्यादि से । जो मन प्रभृति के प्रेरक परब्रह्म श्रीरामजी हैं वे वाणी से अर्थात् अनादि निधन वेद वाणी से भी प्रकाशित करने के योग्य नहीं हैं । तब वेदेतर वाणी उस ब्रह्म को प्रकाशित किस तरह कर सकती है अर्थात् नहीं कर सकती है–**'येन वागित्यादि'** जिस परब्रह्म से प्रवर्तित होती हुई वाणी पुरुषों से उच्चार्यमाण होती है, वही मनः प्रभृति के प्रेरक ब्रह्म हैं । हे शिष्य ? तुम ऐसा जानो । जो यह दृश्यमान चिदचित् स्वरूप जगत् की कामाकुलित

जीव उपासना करते हैं वह यह परिदृश्यमान चिदचित्स्वरूप जगत् ब्रह्म नहीं है ऐसा तुम समझो ।।४।।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।५।।

जिस परब्रह्म श्रीरामजी को मनसे सम्पूर्णतया नहीं जान पाते हैं पर जिस श्रीरघुनाथजी से प्रेरित मनसे मनुष्य जान पाता है ऐसा श्रीराम तत्त्व वेत्ता जन कहते हैं अतः तुम निश्चय रूपसे उसी श्रीरामजी को परब्रह्म के रूपमें जानो जो इस जड तथा चेतन स्वरूप जगत की उपासना करते हो वह ब्रह्म नहीं है ।।५।।

यत् मनः प्रभृतिप्रेरकं ब्रह्म मनसा मनोरूपेणेन्द्रियेण न मनुते कश्चिज्जीव इति शेषः । इदं ब्रह्म इत्त्थमिति साकल्येन मनोद्वाराऽपि कश्चित् न वेत्तुमर्हतीतिभावः । येन परमब्रह्मणा मनः अन्तःकरणरूपम् मनः प्रकाशितं भवति यद्वा येन ब्रह्मणा मनः प्रेरितं सत् मतं स्वव्यापारयुक्तं भवति इति आहुः प्राचीना आचार्या इतिशेषः । तदेव मनः प्रभृतिप्रेरकं ब्रह्मेति त्वं विद्धि । नेदमित्यादीनां पूर्ववदेवार्थः ।।५।।

मन प्रभृति का प्रेरक जो ब्रह्म है उसे मन इन्द्रिय से कोई भी जीव मनन नहीं कर सकता है अर्थात् यह ब्रह्म इसप्रकार से साकल्येन मनो द्वारा भी उस ब्रह्म को कोई नहीं जान सकता है । और जिस ब्रह्म से अन्तःकरण रूप

जो मन इन्द्रिय है वह प्रकाशित होता है। यद्वा जिस ब्रह्म से प्रेरित होता हुआ मन मत होता है। अर्थात् स्वव्यापार युक्त होता है। इस तरह प्राचीन आचार्य लोग कहते हैं। उसी मनः प्रभृति के प्रेरक ब्रह्म को जानो। नेदम् इत्यादि का अर्थ पूर्ववत् समझना चाहिये। अर्थात् इस परिदृश्यमान चिदचित्स्वरूप की जो उपासना करते हो वह ब्रह्म नहीं है ॥५॥

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥६॥

जिन सर्वेश्वर श्रीरामजी को अपने सामान्य आँख से जीव नहीं दीख पाता है पर उन्हीं श्रीरघुनाथजी की प्रेरणा से जीववर्ग अपने आँखें विषयों को दीखती हैं तुम उन्हीं सर्वप्रेरक श्रीरामजी को निश्चित रूपसे परब्रह्म श्रीरामजी को अवगत कर लो जो परिदृश्यमान चल एवं अचल की उपासना जीववर्ग करते हैं वह परब्रह्म सर्वशरण्य श्रीरामजी नहीं हैं ॥६॥

यत् परब्रह्मस्वरूपं चक्षुषा चक्षुरिन्द्रियेण न पश्यति न जानाति कश्चित् जीव इति शेषः। येन सर्वेश्वरेण प्रेरितानि चक्षूंषि चक्षुरिन्द्रियाणि पश्यति, छान्दसत्वात् वचनव्यत्यासः पश्यन्ति स्वविषयप्रकाशकानि भवन्ति, इत्यर्थः, यद्वा पश्यन्ति दृश्यन्ते इत्यर्थः, परमात्मना दृश्यन्ते चक्षूंषि अतीन्द्रियत्वं तु तेषामस्मदाद्यपेक्षया न

परमात्मापेक्षयेति भावः । अत्र पक्षे पश्यतीत्यत्र वचनव्यत्यासः कर्मार्थे कर्तृप्रत्ययश्च छान्दसत्वादेवा वगन्तव्यः । तदेवेत्यादेरुत्तरार्धस्य पूर्ववदेवार्थोऽनुसन्धातव्यः ॥६॥

जिस परब्रह्म स्वरूप को चक्षु से चक्षुरिन्द्रिय नहीं जान सकता है कोई भी पुरुष । और जिस परब्रह्म श्री रामजी से प्रेरित होकर चक्षुरिन्द्रिय विषय को जानता है। अर्थात् स्वकीय रूपादिक विषय को प्रकाशित करता है । यहां पश्यति में वचन व्यतय को समझना चाहिये । अर्थात् एक वचन स्थान में बहुवचन का प्रयोग करना चाहिये । यद्वा पश्यन्ति दृश्यन्ते परमात्मा के द्वारा चक्षुरिन्द्रिय देखा जाता है । इन्द्रिय में जो अतीन्द्रियत्व है वह अस्मदादि की अपेक्षा से है नतु परमात्मा की अपेक्षया है । इस पक्ष में पश्यन्ति में वचन व्यत्यास तथा कर्म अर्थ में कर्तृ प्रत्यय को छान्दस होने से हुआ है ऐसा समझना चाहिये-'**तदेव ब्रह्म**' इत्यादि । उत्तरार्ध का अर्थ पूर्ववत् पांचवें मन्त्र के समान जानें ॥६॥

यच्छ्रोत्रेण न श्रृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥७॥

जो साधक परब्रह्म श्रीरामजी को प्राकृत अपने कान से नहीं सुन

सकता है परन्तु उन श्रीरामजी से प्रेरित होकर यह कान श्रीराम विषयक शब्दों को सुनता है तुम निश्चयपूर्वक उसी श्रीरामजी को परब्रह्म जानो किन्तु जो यह चर तथा अचर जगत की उपासना करते हैं वह परब्रह्म शरणागतवत्सल श्रीरामजी नहीं हैं ॥७॥

यत् सर्वेश्वरस्वरूपं श्रोत्रेण इन्द्रियेण न श्रृणोति कश्चित् श्रावणप्रत्यक्षविषयं न कुरुते तत्स्वरूपस्य श्रोत्रेन्द्रियाऽविषयत्वात् । येन परब्रह्मणाप्रेरितं सत् श्रोत्रमिन्द्रियं श्रुतं श्रावणप्रत्यक्षविषयीकृतम् भवति । यद्वा श्रुतं स्वविषयकप्रत्यक्षजननरूपस्वव्यापारसमर्थं भवति इत्यर्थः । उत्तरार्धन्तु प्राग्वदेव व्याख्येयम् ॥७॥

जो सर्वेश्वर परमात्मा श्रीरामजी का स्वरूप श्रोत्रेन्द्रिय से नहीं सुना जाता है अर्थात् श्रावण प्रत्यक्ष का विषय नहीं करता है क्योंकि परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप श्रोत्रेन्द्रिय का विषय नहीं है । और जिस परमात्मा से प्रेरित होता हुआ श्रोत्रेन्द्रिय श्रुत श्रावण प्रत्यक्ष का विषय होता है । अथवा श्रुत होता है अर्थात् स्वविषयक प्रत्यक्ष जनन स्वरूप स्वव्यापार में समर्थ होता है । उत्तरार्ध की व्याख्या पूर्ववत् है ॥७॥

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥८॥

८ 卐 इति केनोपनिषदि प्रथमः खण्डः ॥१॥ 卐

जिन परमेश्वर श्रीरामजी को कोई भी साधक जीववर्ग अपने प्राण से प्राणयुक्त नहीं कर पाता है परन्तु जिन श्रीरघुनाथजी से प्रेरणा पाकर यह प्राण अपने विषयों में अग्रसरित हो जाता है तुम उसी को निश्चय रूपसे परब्रह्म श्रीरामजी हैं, ऐसा जानों जो परिदृश्यमान इस जगत की सामान्य ज्ञान वाले जन उपासना करते हैं वह परब्रह्म श्रीरामजी नहीं हैं ॥८॥

यत् मनः प्राणादिप्रेरकपरमात्मतत्वं प्राणेन प्राणाख्येन करणेन न प्राणिति न चेष्टते जीवनापरपर्यायप्राणनव्यापारवत् न भवतीति यावत् । येन पर ब्रह्मणा प्राणः शरीरधारणकर्तृतया प्रसिद्धः प्राणः प्रणीयते प्रेर्यते यत्प्रेरितः सन् शरीरधारणात्मस्वव्यापार वान् भवतीत्यर्थः । तदेव ब्रह्मेत्यादेः प्राग्वदर्थः ॥८॥

卐 इति केनोपनिषदि आनन्दभाष्ये प्रथमः खण्डः ॥१॥ 卐

जो मन प्राण प्रभृति के प्रेरक आत्म तत्व प्राण से प्राण नामक करण से चेष्टा नहीं करता है अर्थात् जीवनापरपर्याय प्राणन व्यापारवान् नहीं होता है । और जिस परब्रह्म श्रीरामजी से प्रेरित हो करके प्राण शरीरधारण कर्तृता रूपसे प्रसिद्ध प्राण प्रेरित होता है अर्थात् जिस परमात्मा से प्रेरित हो करके शरीरधारण लक्षण स्वव्यापारवान् होता है । 'तदेव ब्रह्म' इत्यादि का अर्थ पूर्ववत् समझना चाहिये ॥८॥

卐 अथकेनोपनिषदो द्वितीयः खण्डः 卐

यत् साकल्येन सर्वेश्वरस्य ज्ञानागोचरत्वं 'नेदं यदिदमुपासते' इत्यादिवाक्यप्रतिपादितम् तदेव दृढीकर्तुं गुरुरुपदिशति-

यदि मन्यसे सुवेदेति दहरमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपं यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥१॥

यदि तुम ऐसा अनुभव करते हो कि सर्वेश्वर श्रीरामजी के तात्विक स्वरूप को मैं जान गया हूँ तब निश्चित ही परब्रह्म के दिव्य स्वरूप का थोडा ही भाग को जानते हो अतः उस परब्रह्म श्रीरामजी का तुम अंश हो तथा उसी श्रीरामजी का ही स्वरूप देववर्ग में है वह अवश्य ही विचार का विषय है अतः निश्चय रूपसे मानता हूँ कि तुमने परब्रह्म के स्वरूप को जाना है ॥१॥

हे शिष्य ? सुवेद सम्यग्जानामि ब्रह्मणो रूपमहमिति शेषः इति यदि मन्यसे अभिमानं कुरुषे तदा त्वं नूनं निश्चितम्, दहरमेव अल्पमेव ब्रह्मणो रूपं वेत्थ जानासि, ब्रह्मणः स्वरूपस्य अनन्तत्वेन सम्यग् ज्ञानानर्हत्वात् । त्वम् इत्यत्र सप्तम्यर्थे प्रथमा छान्दसत्वात्, अतः त्वयि शिष्ये यत् ब्रह्मणो रूपम् अन्तर्यमनकर्तृ । अथशब्दः अप्यर्थकः देवेष्वथ देवेष्वपि अस्य ब्रह्मणः यद् रूपम् ते त्वया विदितम् ज्ञातम् तत्तु मीमांस्यमेव

नु विचारणीयमेव साम्प्रतम् अनन्तस्वरूपस्य ब्रह्मणः इदानीमपि त्वया कात्स्न्र्येन, अज्ञातत्वात् कात्स्न्र्येन ज्ञानानर्हस्वभावं हि परंब्रह्म । अतः यद् ज्ञातं तदल्पमेव ज्ञातं मीमांसनीयता तिष्ठत्येव ब्रह्मणि त्वयापीतिभावः१

सर्वेश्वर परमपुरुष श्रीरामजी को सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान का अविषयत्व **'नेदं यदिदमुपासते'** इत्यादि वाक्य से प्रतिपादित जो है उसी वस्तु को स्पष्ट करने के लिये गुरु उपदेश करते हैं-**'यदि मन्यसे'** इत्यादि से। हे शिष्य ? मैं ब्रह्म के स्वरूप को बराबर जानता हूँ, ऐसा यदि तुमको अभिमान होता हो तो निश्चित रूपसे तुम ब्रह्म के दहर-अत्यल्प रूप को जानते हो क्योंकि ब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी का जो स्वरूप है वह अनन्त है इसलिये सम्यग् ज्ञान के योग्य नहीं है। **'त्वम्'** यहां सप्तमी के अर्थ में प्रथमा विभक्ति छान्दस होने से है। अतः तुम शिष्य में जो ब्रह्म का रूप आन्तर अकर्ता लक्षण इसको तो यथा कथञ्चित् जाना भी हो किन्तु देवताओं में जो ब्रह्म का रूप है, क्या उसे तुमने जाना ? वह रूप तो तुम से अभी भी विचारणीय ही है। क्योंकि अनन्त रूप ब्रह्म को अभी भी सम्पूर्ण रूपसे नहीं जाना है। ब्रह्म तो सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान के अयोग्य है। इसलिये जो जाना वह तो अल्प ही ज्ञात हुआ। अतः मीमांस्यता तो ब्रह्म में अभी भी है ही१

ननु ममाज्ञस्य शिष्यस्य साकल्येन ब्रह्मस्वरूपज्ञानाभावेऽपि गुरुवर्यस्य भवतस्तु सम्यग् ज्ञानित्वं स्यादेव सम्यग् ज्ञानित्वेन विश्रुतो हि भवान् इत्याकांक्षा- यामाह गुरुः-

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेतिं वेद च ।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ॥२॥

साधन होने पर भी मैं परमेश्वर श्रीरामजी को जानता हूँ ऐसा नहीं मानता हूँ एवं ऐसा भी नहीं मानता हूँ कि भगवान् श्रीरामजी को नहीं जानता हूँ हम सभी साधकवर्ग में जो कोई उस परमेश्वर को जानते हैं वे उस परब्रह्म के स्थिति को जानते नहीं एवं जो ब्रह्म को नहीं जानता हूँ ऐसा कहता है वही भगवान् श्रीरामजी को जानता है २

सुवेद सम्यग् जानाति ब्रह्मस्वरूपमयमाचार्य इति लोकाः वदन्ति अतोहं तथा विश्रुतः अहमाचार्यस्तु सुवेदेति सम्यग् जानामीति न मन्ये सम्यग् ज्ञानित्वाभिमानं न करोमि । तर्हि भवानपि सर्वथा न वेत्ति किम् इत्यत्राह नो न वेदेति न वेद न जानामि इति न किन्तु वेद जानाम्येव, अनन्तत्वात् साकल्येन न जानामि तथापि गुरूपदिष्टरूपेण तु जानाम्येवेतिभावः । न यः तद्वेद स नो तद्वेदेति योजना । इति, वदति च पदद्वयमध्याहार्य योजनीयम् । तथा च नः ब्रह्मज्ञानित्वेन विश्रुतानामस्माकं मध्ये यः कोऽपि आचार्यः तत् ब्रह्म

स्वरूपं वेद कात्स्न्र्येनाहं जानामि इति वदति सः तादृग् ज्ञानाभिमानी नैव तद्ब्रह्मस्वरूपं वेद जानातीत्यर्थः । ब्रह्मस्वरूपस्य साकल्येन ज्ञानाभिमानी अस्मादृशविश्रुतोऽपि नैव सम्यग् जानामीतिभावः । यश्च न वेदेति वदति स वेद इति योजना । तथा च-यः न वेद ब्रह्मस्वरूपं साकल्येन न जानाम्यहमिति वदति स वेद जानाति सम्यक् । ब्रह्मस्वरूपस्य साकल्येन ज्ञेयस्वभावतया ग्रहसाकल्येन न जानामीति ज्ञानवानेव सम्यग् ज्ञानवान् ब्रह्मणः अपरिच्छिन्नत्वस्य तेन ज्ञातत्वात् । अहं सम्यग् जानामीति ज्ञानवांस्तु परिच्छिन्नत्वमेव ब्रह्मणो ज्ञातवानतः स न सम्यग् ज्ञानीतिभावः । इयमेव ब्रह्मणः गुणानामविज्ञाने यः साकल्येन ब्रह्मगुणान् जानामीति मन्यते स न सम्यग् ज्ञानी तद्गुणानामनन्तत्वेन साकल्येन ज्ञातुमनर्हत्वात् । ब्रह्मगुणान् साकल्येन न जानामीति मन्यते स एव तद्गुणविज्ञानी अपरिच्छिन्नत्वेन तत् तद्गुणज्ञानात् इति बोध्यम् ॥२॥

हे गुरो ? मैं शिष्य तो अल्पज्ञ हूँ, अतः मुझे सम्पूर्ण रूपसे ब्रह्म ज्ञान का अभाव होने पर भी गुरु महाराज आपको तो सम्यग् ज्ञानित्व होना चाहिये क्योंकि आप तो ब्रह्मज्ञानी रूपसे लोक में प्रसिद्ध हैं । एतादृश

जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-गुरु महाराज-'नाहं मन्ये सुवेदेतीत्यादि' आचार्य महाराज समीचीन रूपसे ब्रह्म स्वरूप को जानते हैं ऐसा लोग बोलते हैं। इसलिये लोक में विश्रुत है कि आचार्य समीचीन रूपसे ब्रह्मस्वरूप को जानते हैं। मैं तो ऐसा नहीं मानता हूँ, कि ब्रह्म स्वरूप को मैं बराबर जानता हूँ, अर्थात् ज्ञानित्व का अभिमान मैं नहीं रखता हूँ, तब क्या आप भी उस सर्वेश्वर परमात्मा श्रीरामजी को नहीं जानते हैं। एतादृश शिष्य जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-'नो न वेदेति' नहीं जानता हूँ, ऐसा नहीं किन्तु जानता हूँ। परमात्मा अनन्त गुणवान् हैं तो अनन्त गुणाधिकरणता रूप साकल्य से तो नहीं जानता हूँ, किन्तु गुरु के उपदेश प्रकार से तो जानता हूँ यह भाव है। हमलोगों के बीच में जो कहता है जो मैं जानता हूँ, वह बराबर नहीं जानता है, इसप्रकार-'यो नः तद्वेद स नो तद्वेद' यहां योजना करनी चाहिये और इति पद तथा वेद पद द्वय का अध्याहार करना चाहिये। तब यह अर्थ होता है कि-ब्रह्मज्ञानी रूपसे लोक में विश्रुत हमलोगों के बीच से जो कोई आचार्य कहते हैं जो साकल्येन ब्रह्मस्वरूप को जानता हूँ, नो नैव वह स्वरूप को नहीं जानता है। अर्थात् ब्रह्मस्वरूप के साकल्येन ज्ञाता भी मेरे सदृश

लोक विश्रुत भी व्यक्ति साकल्येन ब्रह्म रूप को नहीं जानता है। **'यश्च न वेदेति वदति स वेद'** जो नहीं मैं जानता हूँ, ऐसा बोलता है वह बराबर जानता है, इसप्रकार वाक्य की योजना होती है। तब ऐसा अर्थ होता है कि जो कहे कि मैं ब्रह्मस्वरूप को साकल्येन नहीं जानता हूँ, वह समीचीन रूपसे ब्रह्म को जानता है क्योंकि ब्रह्मस्वरूप साकल्येन अज्ञेय स्वभावक होने से मैं साकल्येन नहीं जानता हूँ, एतादृश ज्ञानवान् ही सम्यग् ज्ञानवान् है क्योंकि उसने ब्रह्म की अपरिच्छिन्नता को जान लिया और मैं समीचीन रूपसे ब्रह्म को जानता हूँ, एतादृश ज्ञानवान् जो है वह तो ब्रह्म के परिच्छिन्नत्व को ही जानता है। इसलिये वह सम्यग् ज्ञानी नहीं है। यही तो ब्रह्म विज्ञान में गुण है कि जो साकल्येन ब्रह्म गुण को मैं जानता हूँ, ऐसा मानता है वह समीचीन रूपसे नहीं जानता है क्योंकि ब्रह्म का गुण अनन्त होने से साकल्येन जानने के अयोग्य है। और जो मानता है कि मैं ब्रह्मगुण को साकल्येन नहीं जानता हूँ, ऐसा बोलता है वह वास्तविक ब्रह्मगुणों का विज्ञाता है क्योंकि उसने अपरिच्छिन्नत्व रूपसे ब्रह्मगुण को जाना। अपरिच्छिन्न में अपरिच्छिन्नत्व प्रकारक ज्ञान प्रमा है। और अपरिच्छिन्न में परिच्छिन्नत्व प्रकारक ज्ञान भ्रमरूप है।

सर्वेश्वर श्रीरामजी के अनन्तानन्त गुण समूह हैं उन्हें सामान्य रूपसे जानना असम्भव है इस विषय को श्रीरामहिम्नकार श्रीविजयरामाचार्यजी ने-

कदाचिद्धौयान् वै गणपति कणान् कोऽपि मतिमान्
तथा पारावारोदकलवचयान् श्रीरघुपते ? ।
क्वचिन्नक्षत्रौघं वियति गणनायां नयति वै
गुणानां ते पारं गमयितुमलं नैव कुशलाः ॥

हे अनन्त जीवों के नाथ श्रीरामजी ? कोई विशिष्ट बुद्धिवाला व्यक्ति भूमिकणों को कथञ्चित् गणना करले या समुद्र कणों को भी गिन डाले अथवा आकाश में स्थित अनन्त नक्षत्र समूहों को भी गिन ले परन्तु आपके अनन्तानन्त दिव्यगुण समूहों को गिनकर अन्त नहीं पा सकता है तो मेरे जैसा सामान्य बुद्धिवाला जन दिव्य अनन्त महिमा का वर्णन कैसे कर सकता है । इसप्रकार प्रस्तुत किया है अतः सर्वेश्वर श्रीरामजी की अहैतुकी कृपा के विना परब्रह्म श्रीरामतत्त्व नहीं जाना जा सकता है कृपा प्राप्ति हेतु श्रीरामशरणागति मात्र ही कारण है अन्य नहीं तदर्थ जीवों को प्रयत्न कर सायुज्य मुक्ति प्राप्त करलेना चाहिये जो चरम लक्ष्य है यह प्रकृत मन्त्र का हार्दभाव है ॥२॥

एवं द्वितीयमन्त्रस्योत्तरार्धेन यो नस्तद्वेदेत्यादिना

ब्रह्मस्वरूपस्य साकल्येन श्रवणरूपज्ञानागोचरत्वमुपपादितम् । संप्रति मनननिदिध्यासनगोचरत्वमपि साकल्येन तस्य नास्तीति वदति-

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥३॥

जिस साधक का ब्रह्म को मैंने जानलिया है ऐसा विचार नहीं उससे ब्रह्मतत्त्व जानलिया गया है एवं जिस साधक का यह विचार हो कि मैंने श्रीरामतत्त्व को जानलिया है तो उसने श्रीरामतत्त्व को नहीं जाना है क्योंकि वह ब्रह्मतत्त्व मैंने ब्रह्म को जान लिया है ऐसे अभिमान वाले के लिये वह श्रीरामतत्त्व अविज्ञात ही है एवं जिसे हमसे श्रीरामजी का स्वरूप अविज्ञात-जाना नहीं गया है ऐसा खयाल है उससे परब्रह्म तत्त्व जाना गया है ॥३॥

यस्य जनस्य ब्रह्म मया अमतम् साकल्येन न मननविषयीकृतम् इति बुद्धिरस्ति तस्य ज्ञानिनः कृते ब्रह्म मतम् मननविषयीकृतमेव विचारितमेवेति यावत् ब्रह्मणोऽनन्तत्वस्य तेनावधारणात् । यस्य तु ब्रह्म मया मतम् साकल्येन मननगोचरीकृतम् विचारितमिति यावत् इतिबुद्धिरस्ति स जनः न वेद न ब्रह्मविषयकमननवान् ब्रह्मणोऽपरिच्छिन्नत्वस्य तेनाज्ञातत्वात् तथा विजानतां ब्रह्म मया सम्यक् निदिध्यस्तम् साक्षात्कृतमिति यावत् इति विशेषेण ज्ञानाभिमानिनाम् कृते अविज्ञातम् ब्रह्म न सम्यक् साक्षात्कृतमित्यर्थः । ब्रह्म

णोऽपरिच्छिन्नत्वेन सम्यक् साक्षात्कारानर्हत्वात् । अविजानताम् ब्रह्म मया न सम्यक् साक्षात्कृतम् इत्येवं ज्ञानवतां कृते तु ब्रह्म विज्ञातमेव सम्यक् साक्षात्कृत मेव ब्रह्मणोऽपरिच्छिन्नत्वस्य तैः परिज्ञातत्वात् एवं ब्रह्मगुणानामपि साकल्येन मननिदिध्यासनागोचरत्व-माकलनीयम् तेषामप्यनन्तत्वात् ॥३॥

द्वितीय मन्त्र के उत्तरार्ध से 'योनस्तद्वेद' इत्यादि वाक्य जात से ब्रह्मस्वरूप के साकल्येन श्रवणरूप ज्ञान के अविषयत्व का उपपादन किया गया । संप्रति मनन निदिध्यासन विषयता भी साकल्येन ब्रह्म स्वरूप को नहीं है इस बात को बतलाने के लिये कहते हैं-'यस्यामतम्' इत्यादि । जिस पुरुष को ब्रह्म हमसे अमत है अर्थात् समस्त रूपसे मनन का विषय नहीं हुआ एतादृश बुद्धि है उस पुरुष को ब्रह्ममत हुआ मनन का विषय हुआ अर्थात् उस पुरुष से बराबर ब्रह्म विचारित हुआ । क्योंकि उसने ब्रह्म की अपरिच्छिन्नता का अवधारण-निश्चय कर लिया । और जिस पुरुष को ब्रह्म हमसे मत हुआ साकल्येन मनन का विषय हुआ अर्थात् हमसे विचारित हुआ एतादृश बुद्धि है उस पुरुष ने ब्रह्म को नहीं जाना अर्थात् ब्रह्म विषयक मननवान् नहीं हुआ क्योंकि उसने ब्रह्म की अपरिच्छिन्नता को नहीं जाना-

'अविज्ञातं विजानतामिति' ब्रह्म का मैंने समीचीन रूप से निदिध्यासन किया अर्थात् बराबर विचार किया। एतादृश विशेष रूपसे ज्ञान के अभिमानवान् है उसके लिये ब्रह्म अविज्ञात है अर्थात् तादृश व्यक्ति को वास्तविक रूपसे ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हुआ। क्योंकि ब्रह्म तो अपरिच्छिन्न होने से समीचीन रूपसे साक्षात्कार का विषय नहीं है-**'अविजानतामिति'** ब्रह्म का साक्षात्कार मुझे बराबर नहीं हुआ एतादृश ज्ञानवान् पुरुष के लिये तो ब्रह्मज्ञात है अर्थात् उसने ब्रह्म का वास्तविक रूपसे साक्षात्कार किया। क्योंकि ब्रह्म की अपरिच्छिन्नता को उसने जान लिया। इसीप्रकार ब्रह्म का जो गुण समुदाय है उसका भी साकल्य रूपसे मनन निदिध्यासन अविषमता का विचार करना चाहिये। क्योंकि ब्रह्म का जो गुण है वह भी अनन्त है तो जो मैंने ब्रह्म गुणों को जान लिया है एतादृश ज्ञानवान् है वह भ्रान्त है और जो मैंने साकल्येन ब्रह्मगुण को नहीं जाना है एतादृश बुद्धिवाला पुरुष है वह अभ्रान्त है क्योंकि उसने ब्रह्मगुण की अनन्तता को जान लिया ॥३॥

ननु ब्रह्मस्वरूपं यदि साकल्येन विदितं न स्यात् तदा मोक्ष एव न सिध्येत इतिशंकमानं शिष्यं प्रति वदति गुरुः-

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते ।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ४

अपने अनुभूत प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा अपनी योग्यता के अनुसार निश्चय रूपसे अनुभूत सभक्तिक ज्ञान से ही साधक सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है धैर्य स्वरूप आत्मा से सन्तुलित मनरूपी बल को जानलेता है तथा श्रीरामजी की उपासना स्वरूप विद्या से परब्रह्म श्रीरामतत्त्व को प्राप्त करलेता है ॥४॥

अत्र मन्त्रे श्रुतमितिशब्दोध्याहार्यः मनननिदिध्यासनबोधकशब्दसामर्थ्यात् ततः येन पुंसा विधिवद भिगतगुरुमुखात् ब्रह्मश्रुतम् सत्यत्वज्ञानत्वानन्तत्वादिभिः ब्रह्मेतराऽसाधारणैः धर्मैः ब्रह्मविषयकश्रावण ज्ञानं कृतम् तदनन्तरं मतम् उपपत्तियोजनया गुरु सब्रह्मचारिसम्बादेन शंकादिव्यावृत्त्यै मननात्मकं ज्ञानविषयीकृतम् तदनन्तरं प्रतिबोधविदितम् प्रतिबोधः निदिध्यासनम् उपासना वा तेन विदितम् साक्षात्कृतं ब्रह्म स पुमान् हि निश्चयेन अमृतत्वं मोक्षं विन्दते प्राप्नोति । साकल्येनाज्ञानेऽपि श्रवणमनननिदिध्यासनेन ब्रह्मणः योग्यैकदेशसाक्षात्कारेऽपि मोक्षलाभोभवति, अतो हे शिष्य न त्वयोद्विग्नेन भाव्यमिति गुरोराशयः । आत्मना धृत्या वीर्यं मनोऽवधानरूपं विद्यानिष्पत्तिजनकं बलं विन्दते लभते तेन च निष्पन्नया विद्यया

उपासनारूपया भक्त्या अमृतं परमात्मस्वरूपं विन्दते पश्यति साक्षात्करोतीत्यर्थः । धृत्या मनः समाधाय विद्यानिष्पत्तिद्वारा ब्रह्मसाक्षात्कारो भवति । ततश्च मोक्षसिद्धिर्भवतीति क्रमोऽत्र शिष्यमनः समाधानाय प्रदर्शितः कृपालुनाचार्येण । यद्वा बुध्यते इति बोधः वेद्यं वस्तु बोधे बोधे इति प्रतिबोधम्, प्रतिबोधं विदितमिति प्रतिबोधविदितम् । यद् यद् वेद्यं वस्तु तत्र तत्र अन्तर्यामितया वर्तमानं ब्रह्मास्तीति येन विदितं तेन ब्रह्म सम्यगवधारितम् स पुमान् अमृतत्वं विन्दते मोक्षं लभते इत्यर्थः कार्यः । अग्रिममन्त्रोत्तरार्धे नोपोद्वलितश्चायमर्थ इति बोध्यम् ॥४॥

यदि ब्रह्मस्वरूप साकल्य रूपसे विदित नहीं हुआ तब तो ब्रह्मज्ञान के अभाव होने से मोक्ष सिद्ध नहीं होगा ? एतादृश शंकाशील शिष्य के प्रति गुरु कहते हैं- '**प्रतिबोधविदितमित्यादि**' इस मन्त्र से '**श्रुतम्**' इत्याकारक शब्द का अध्याहार करना चाहिये । क्योंकि मनन निदिध्यासन बोधक शब्द के सामर्थ्य होने से । तब जिस पुरुष ने विधिवत् गुरु समीप में जा करके गुरु मुख से ब्रह्म का श्रवण किया । सत्यत्व ज्ञानत्व अनन्तत्वादिक अनन्य साधारण ब्रह्मधर्म द्वारा ब्रह्म विषयक श्रावण ज्ञान का संपादन किया । तदनन्तर '**मतम्**' उपपत्ति तर्क

योजनापूर्वक गुरु तथा सहाध्यायियों के द्वारा शंका निवृत्ति के लिये मननात्मक ज्ञान का विषय ब्रह्म को किया। उसके वाद **'प्रतिबोधविदितम्'** प्रतिबोध शब्द का अर्थ होता है-निदिध्यासन अथवा उपासना तादृशो पासना द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार किया। एतादृश पुरुष नियमतः अमृतत्व अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है। यद्यपि साकल्येन ब्रह्म का ज्ञान नहीं हुआ तथापि श्रवण मनन निदिध्यासनों से ब्रह्म का योग्य एकदेश का साक्षात्कार होने पर भी मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः हे शिष्य ? तुम उद्विग्न हताश मत बनो ऐसा गुरु का आशय है। आत्मा से धैर्य से वीर्य प्राप्त होता है अर्थात् मन का अवधानरत विद्या निष्पत्तिजनक बल की प्राप्ति होती है। और उसके बाद विद्या के निष्पन्न हो जाने पर उपासना रूप भक्ति से अमृत अर्थात् परमात्मस्वरूप को देखता साक्षात्कार करता है। उसके बाद परमेश्वर साक्षात्कार के अनन्तर में मोक्ष की सिद्धि होती है। शिष्य के मन के समाधान करने के लिये कृपालु आचार्य ने क्रम को यहां बतलाया है। अथवा बुद्ध जो हो उसे बोध कहते हैं अर्थात् वेद्य वस्तु। प्रत्येक बोध में जो हो उसे कहते हैं प्रतिबोध। तादृश प्रतिबोध से विदित को प्रतिबोध विदित कहते हैं। जो जो वेद्यज्ञान

विषयं वस्तु है उन सब में अन्तर्यामी रूपसे वर्तमान ब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी हैं इस बात को जिसने जाना उस पुरुष ने ब्रह्म को समीचीन रूपसे जाना, वह पुरुष अमृतपदवाच्य मोक्ष को प्राप्तकर सकता है ऐसा अर्थ करना चाहिये । अंतिम मन्त्र के उत्तरार्ध भाग से यह अर्थ पुष्ट होता है ॥४॥

नन्वेवमुक्ता परमात्मस्वरूपसाक्षात्कारिणी विद्या कदा सम्पादनीयेत्यत्र गुरुराह-

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहा वेदीन् महती विनष्टिः । भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥५॥

卐 इति केनोपनिषदि द्वितीयः खण्डः 卐

साधक जीववर्ग ने यदि मनुष्य देह के रहते ही आन्तरिक रूपमें अन्तरात्मा श्रीरामजी को अवगत कर लिया तो अमृत रूप परब्रह्म श्रीरामजी की प्राप्ति सत्य है परन्तु इस देह के होते ही उस परतत्त्व श्रीरामजी को नहीं जाना तो महान् हानि है अतः धीर-विवेकी पुरुष सभी भूतवर्ग में अन्तरात्मतया स्थित श्रीरघुनाथजी का पूर्ण रूपसे संस्मरण करके इस मानव लोक से गमन कर अमृतत्व को प्राप्त कर जाते हैं अर्थात् श्रीरामसायुज्य प्राप्त करके जन्म-मृत्यु से रहित हो जाते हैं ॥५॥

इह जन्मनि शास्त्राधिकारवति ब्राह्मणादिशरीरे सति यदि अवेदीत् ज्ञातवान् ब्रह्मेतिशेषः चेत् अथ

तदा सत्यमविश्वरं ब्रह्म विद्याफलस्वरूपमस्ति वर्तते ब्रह्म प्राप्तिर्निश्चितेतिभावः । इह ब्राह्मणादिजन्मनि न अवेदीत् ब्रह्मज्ञानवान् नाभूच्चेत् तदा महती विनष्टिः महाननर्थः संसाराऽकूपारचंक्रमॅणस्वरूपः भवेत् । अतः ब्राह्मणादिशरीरे विद्याप्राप्तियोग्ये प्राप्ते सति सद्य एव ब्रह्मविज्ञानाय यतनीयम्, विलम्बो न कार्यमिति भावः । पूर्वमन्त्रोक्तप्रतिबोधशब्दार्थं दर्शयति । भूतेषु भूतेषु सर्वभूतेषु प्रतिबोधेत्यर्थः स्थितं ब्रह्म विचिन्त्य तेभ्यो विलक्षणत्वेनावधार्य आमरणं स्मारं स्मारं धीराः बुद्धिमन्तः बुद्धिस्तु अत्र वेदने ब्रह्मप्राप्ति अवदने महाननर्थः इति विवेकरूपा तेन ईदृशविवेकवन्तः जना अस्मात् लोकात् शरीरात् प्रेत्य शताधिकया मूर्धन्ययानाड्यानिर्गत्य अमृता मुक्ता भवन्ति देशविशेष विशिष्टं परमपुरुषं प्राप्ता भवन्तीति यावत् ॥५॥

卐 इति केनोपनिषदानन्दभाष्ये द्वितीयः खण्डः 卐

उपरोक्त क्रम से परमात्म स्वरूप साक्षात्कारिणी विद्या का कथन किया गया परन्तु एतादृश विद्या का संपादन कब करना चाहिये इस जिज्ञासा के उत्तर में गुरु कहते हैं-'इह चेदवेदीदित्यादि' से इस जन्म में शास्त्राधिकारी ब्राह्मणादिक शरीर की विद्यमानता में यदि ब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी को जान लिया तब तो ठीक है

अर्थात् एतत् शरीरावच्छेदेन ब्रह्मज्ञान हो गया तब तो ब्रह्म प्राप्ति निश्चित ही है । यदि कदाचित् इस ब्राह्मणादि जन्म में ब्रह्मज्ञान को प्राप्त नहीं किया तो बहुत बडी क्षति हुई अर्थात् यदि ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ तो संसार चक्ररूप जो महासागर है उसमें परिभ्रमणरूप महान् अनर्थ प्राप्त होगा। अतः विद्या प्राप्ति के योग्य ब्राह्मणादि शरीर की प्राप्ति होने पर ब्रह्मज्ञान के लिये अवश्यमेव प्रयत्न करना चाहिये । विलम्ब नहीं करना चाहिये ।

पूर्व मन्त्र में जो प्रतिबोध शब्द आया है उसके अर्थ को बतलाने के लिये कहते हैं-'भूतेषु' इत्यादि । भूत भूत में सर्वभूतों में (प्रतिबोध का अर्थ है ।) स्थित ब्रह्म को भूतादि भूतादि विलक्षण रूपसे निश्चय करके आमरण इस वस्तु का स्मरण करता हुआ धीर धीर बुद्धिमान् व्यक्ति । यहां बुद्धि शब्द का अर्थ है-कि ब्रह्म स्वरूप को जानने योग्य शरीर प्राप्त होने पर भी ब्रह्म प्राप्तिरूप अर्थ को नहीं जानने पर यह अनर्थ प्राप्ति होती है इत्यादि विवेक रूप ही है । इसलिये एतादृश विवेक वान् पुरुष इसलोक से इस शरीर से जाकरके अर्थात् शताधिक मूर्धन्य नाडी द्वारा निकल करके अमृत होते हैं मुक्त हो जाते हैं अर्थात् देशविशेष विशिष्ट में स्थित परम पुरुष सर्वेश्वर श्रीरामजी को प्राप्त हो जाते हैं ॥५॥

卐 अथ केनोपनिषदस्तृतीयः खण्डः 卐

न केवलं मनः प्राणप्रभृतीनां परमात्मप्रेरितानामेव स्वस्वकार्यकरणसामर्थ्यमपितु देवादीनां सामर्थ्य वत्तया प्रसिद्धानां चेतनानामपि परमेश्वराहितशक्ती-नामेव स्वस्वकार्यविशेषकर्तृत्वं नान्यथेति आख्यायिकामुखेन प्रदर्शयति गुरुः-

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥१॥

यह निश्चित है कि ब्रह्म ने अन्तर्यामी श्रीरामजी ने ही देवताओं में प्रवेश करके असुरों पर विजय पाई किन्तु असुर विजयी होने पर उस देव शरीरक परब्रह्म के विजय में भी देव-इन्द्र आदि देववर्ग ने विजय सम्बन्धी अपने महत्व का प्रदर्शन कर वे देववर्ग यों समझने लगे इस युद्ध का विजय निश्चित ही हमी लोगों का है एवं यह प्रभाव भी हमलोगों का ही है ॥१॥

ब्रह्म सकलचिदचिदन्तयमनकर्तृपरमपुरुष इति यावत् । पुरादेवासुरसंग्रामे देवेभ्यः देवानां कृते देवेष्वाविश्य तत्करणबलाधानेन विजिग्ये असुरान् विजितवत् । ह शब्दो निश्चये, एतन्निश्चितमित्यर्थः । अथ विजयानन्तरम् तस्य देवेष्वाविष्टस्य ब्रह्मणः विजये ब्रह्मकर्तृके असुरविजये सत्यपि तदजानन्तो देवा

अमहीयन्त स्वमहत्वममन्यन्त । अहंकारवन्तोऽभवन्निति भावः । ह शब्दोऽत्राश्चर्ये ब्रह्मनिमित्तकविजयेऽपि एतेऽहंकारिण इति आश्चर्यमेतदितिभावः । ते देवा अहंकारवशात् ऐक्षन्त ईक्षणं कृतवन्तः । ईक्षणप्रकारमेवाह-अयं प्रत्यक्षविषयो विजयः असुरपराभवलक्षणः अस्माकमिन्द्रादीनामेव नत्वन्यस्य कस्यचित् अयं महिमा सर्वजन्तुकृतस्तुतिपूजादिरूपं महत्वमस्माकमेव इन्द्रादीनां नापरस्येति व्यजानन् ॥१॥

केवल प्राण मन प्रभृतिक अचेतन पदार्थ ही परमात्मा से प्रेरित हो करके स्वकीय स्वकीय कार्य को करने में सामर्थ्यवान् होते हैं इतना ही नहीं किन्तु विशिष्ट सामर्थ्यवान् रूपसे प्रसिद्ध चेतन देवताओं की प्रवृत्ति भी परमेश्वर श्रीरामजी की शक्ति से ही होती है अन्यथा देवों की भी प्रवृत्ति नहीं होती है इस बात को आख्यायिका के द्वारा गुरु शिष्य को बतलाते हैं-'**ब्रह्म ह देवेभ्यः**' इत्यादि से । ब्रह्म अर्थात् सकल चित् अचित् पदार्थ को नियमन करनेवाले भगवान् परमेश्वर श्रीरामजी ने पूर्वकाल में देवासुर के संग्राम में देवों के लिये देवों में प्रविष्ट हो करके देवों के देह तथा करण में बलाधानपूर्वक आसुरों को जीत लिया । यहां ह शब्द निश्चयार्थक है । अर्थात् यह बात निश्चित है । अथ

विजय के वाद उन देवों के शरीर में आविष्ट ब्रह्म कर्तृक विजय होने पर भी परन्तु इस बात को देवों ने नहीं समझकर वे देवगण अहंकार वान् हो गये । यहां ह शब्द आश्चर्य बोधक है । विजय तो ब्रह्म निमित्तक हुआ किन्तु ये देवतालोग अहंकारवान् हो गये यह महाश्चर्य है। तब वे देवतालोग अहंकार से ईक्षण किये । ईक्षण प्रकार को बतलाते हैं-**'अस्माकमेवायम्'** इत्यादि । यह प्रत्यक्ष विषय असुर के पराक्रम बल लक्षण जो विजय है, हम इन्द्रादि देवों के ही हैं किन्तु अन्य किसी कार्य का यह नहीं है और यह महिमा सर्वप्राणीकृत स्तुति पूजादिरूप महत्त्व हम इन्द्रादिक देवों के ही हैं अन्य व्यक्ति के नहीं हैं इस प्रकार देवताओं ने जाना ॥१॥

तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूब तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ॥२॥

सर्वान्तर्यामी परमात्मा श्रीरामजी ने अभिमान युक्त देवों को जानकर उस अभिमान के नाश हेतु साकारतया यक्ष के रूपमें देवों के समक्ष प्रकट हो गये देवलोग उस विचित्र स्वरूप को नहीं जान सके कि यह यक्ष क्या है ॥२॥

ब्रह्म सर्वज्ञः परमपुरुषः एषां देवानां स्वनिमित्तकविजयाभिमानवताम् तत् अहंकारपूर्वमीक्षणम् अस्माकमेवायं विजय इत्यादिरूपं विजज्ञौ अजानात् ।

अनन्तरं ब्रह्म देवेभ्यः देवानां कृते देवान् स्वात्मबोध दानेनानुग्रहीतुम् प्रादुर्बभूब यक्षस्वरूपेण प्रकटमभूत् । हेति निश्चये । तद् यक्षस्वरूपेण आविर्भूतं ब्रह्म किमिदं यक्षमिति देवा न व्यजानन् न ज्ञातवन्तः । अभिमानादिदोषदूषितान्तःकरणतया देवा यक्षरूपेणाविर्भूतमपि ब्रह्म ब्रह्मत्वेन निश्चेतुं नाशन्कुवन्निति भावः ॥२॥

तब सर्वज्ञ महापुरुष परमात्मा श्रीरामजी ने परम पुरुष निमित्तक विजयाभिमानी इन देवों के उस अहंकारपूर्वक ईक्षण को हमारा यह असुर विजय है हम लोगों का यह महत्त्व है इत्यादि रूप अहंकार को जाना। तदनन्तर उसके बाद ब्रह्म परमपुरुष ने देवताओं को ब्रह्मज्ञान के दान द्वारा अनुग्रह करने के लिये अवतार लिया । अर्थात् यक्षस्वरूप से प्रकटित हुए श्रीप्रह्लादजी के लिये श्रीनृसिंह स्वरूप की तरह । ह शब्द निश्चयार्थक है । तद् यक्ष स्वरूप से आविर्भूत जो ब्रह्म उसे यह यक्ष क्या वस्तु है इस बात को लोग नहीं जान सके । अर्थात् अभिमानादिरूप दोष से दूषित अन्तःकरण वाले होने के कारण यक्ष रूपसे आविर्भूत भी ब्रह्म को यह ब्रह्म है हमारे ऊपर अनुग्रह करने के लिये आविर्भूत हुए हैं इसप्रकार से ब्रह्म परमपुरुष को परमपुरुषरूप से निश्चय करने में वे देवतालोग सशक्त नहीं हो सके ॥२॥

तेऽग्निमब्रुवन् जातवेद एतद्विजानीहि कि मेतद्यक्षमिति तथेति ॥३॥

उन इन्द्र आदि देवों ने अग्निदेव से कहे कि हे ज्ञानस्वरूप अग्निदेव ? आप जाकर ठीक तरह से जान लें कि यह विचित्र दिव्याकार वाला यक्ष कौन है देवों की वाणी सुनकर अग्निदेव ने कहा ठीक मैं जानकर अभी आता हूँ ॥३॥

एवं यक्षरूपं ब्रह्माजानन्तो देवा अग्निम् अग्र गमनकर्तारं सर्वतस्तेजस्विनं देवमग्निनामानमब्रुवन् उक्तवन्तः । हे जातवेदः अग्ने एतत् अस्माभिः सर्वैः दृश्यमानं विजानीहि विशेषतोऽवगच्छ इदं पुरः स्थितं यक्षम् किम् देवादिषु कतमदिति । देवादिषु मध्य एतद् दृश्यमानं यक्षात्मकं किमिति विशेषरूपेण निश्चिनु । एवं देवैरुक्तोऽग्निरुवाच तथेति यद्भवद्भिरादिश्यते तत् करिष्यामीति स्वीकृतवानित्यर्थः ॥३॥

इसप्रकार यक्षरूप ब्रह्म परमपुरुष को नहीं जानते हुए इन्द्रादि देवतालोग सब से आगे चलनेवाले सर्वा पेक्षया अत्यन्त तेजस्वी अग्नि नामक देव विशेष से कहने लगे हे जातवेदस् अग्ने ? हम सबलोगों से दृश्य मान अज्ञात नामवाला जो यह आगे में अवस्थित जन्तु विशेष है उसे आप जाकर जानें, विशेष रूपसे जानें कि यह कोई देवता है अथवा क्या वस्तु है, इस बात का

अन्वेषण करें। इसप्रकार देवताओं से आज्ञप्त वे अग्नि बोले 'तथेति' अर्थात् आपलोग इस यक्ष के विषय में जो आदेश देते हैं वह मैं अवश्य करूँगा। इसप्रकार अग्नि ने देवताओं के वचन का स्वीकार किया ॥३॥

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोऽसीत्यग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ।४।

इन्द्रदेव की बात सुनकर अग्निदेव उस यक्ष के समीप गया उस अग्नि देव से यक्ष ने कहा कि तुम कौन हो ? जवाब में अग्नि ने कहा जगप्रसिद्ध अग्निदेव मैं हूँ स्वयं ज्ञानवाला जातवेदा मैं हूँ ऐसा आप जानें ॥४॥

स्वीकृतदेववचनोऽग्निः तद् यक्षस्वरूपेणावस्थितं ब्रह्म अभि आभिमुख्येन अद्रवत् ब्रह्मसमीपं गतवान्। द्रुगतौ धातुः। अभिमुखमागतं जिज्ञासावन्तं वह्निदेवं तद् ब्रह्म अभ्यवदत् पप्रच्छ कोऽसि मत्समीपमागतस्त्वं को भवसि इत्यर्थः। एवं पृष्टः अग्निरब्रीत् उक्तवान् अग्निः अग्निनामा वै प्रसिद्धोहं सर्वेषामस्मि, जात वेदाः जातवेदो नाम्ना वै प्रसिद्धोहमस्मि सर्वेषामित्युक्तवानित्यर्थः ४

'तदभ्यद्रवदित्यादि' देवताओं के वचन को स्वीकार करके वह अग्नि यक्षरूप से अवस्थित ब्रह्म परम पुरुष के समीप गया। द्रु धातु गत्यर्थक है। इसके वाद वे यक्ष अपनी तरफ आते हुए तथा जिज्ञासावान् अग्नि देव से पूछे-तुम कौन हो ? अर्थात् मेरे समीप में आने

वाले तुम कौन हो ? यक्ष ने जब इसप्रकार पूछा तब अग्निदेव बोले-लोगों में अतिप्रसिद्ध मैं अग्नि हूँ। मैं ज़ातवेदा हूँ, अर्थात् सर्वत्र अतिप्रसिद्ध मैं जातवेदा हूँ ४

एवमुक्तवन्तं वह्निं ब्रह्म पुनः पृच्छति-

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं सर्वं दहेयम्। यदिदं पृथिव्यामिति ॥५॥

यक्ष ने कहा जातवेदा नामवाले आप में क्या शक्ति है ? तब अग्नि ने कहा यदि मैं धारुं तो इस पृथिवी में परिदृश्यमान जो कुछ भी है उस सबको क्षण भर में भस्म कर सकता हूँ ॥५॥

तस्मिन् अग्निजातवेद इति नामद्वयेन प्रसिद्धे त्वयि किं वीर्यं सामर्थ्यमस्तीति ब्रह्म प्रपच्छ, तथा पृष्टोग्निः यदिदं दृश्यमानं पृथिव्यां वस्तु जातं सर्वं दहेयम् भस्मीकुर्यामिति अवदत्। अत्र पृथिवीपदं लोकान्तरस्याप्युपलक्षणम्, तेन ब्रह्माण्डान्तर्वर्तिमूर्तं सर्वं स्थावरजङ्गमात्कं वस्तु दग्धुं मे सामर्थ्यमस्तीति गर्वात्मकमुत्तरं दत्तवानितिभावः ॥५॥

इसप्रकार से कथित अग्नि के प्रति पुनः यक्ष रूप परमपुरुष ने पूछा 'तस्मिन्नित्यादि' से अग्नि तथा जात वेदरूप नामद्वय से प्रसिद्ध तुम में क्या वीर्य है अर्थात् तुम में क्या सामर्थ्य है किस काम को कर सकते हो ? जब इसप्रकार यक्ष ने अग्नि को पूछा तब अग्निदेव ने

कहा पृथिवी पद लक्षित इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत जितना कोई रूपादिमान् मूर्त पदार्थ है उस सबको जला देने की शक्ति मुझ में है ऐसा गर्वपूर्वक उत्तर अग्नि ने दिया । यक्ष ने अग्नि को अवहेलनापूर्वक पूछा तब अग्नि ने अभिमानपूर्वक उत्तर दिया ॥५॥

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥६॥

तब यक्ष ने इस तृण को जला दो ऐसा कहकर अग्नि के सामने छोटासा तृण रख दिया उसे जलाने अग्नि वेग से समीप गया पर पूरी शक्ति लगाने पर भी उसे जलाने में समर्थ नहीं होकर लज्जा के साथ वापस आया एवं इन्द्र से कहा कि मैं इस विचित्र यक्ष को नहीं जान सका कि यह कौन है ॥६॥

एवं सर्वदहनसामर्थ्यं प्रख्यातवतेऽग्नये तद् यक्ष रूपं ब्रह्म तृणं निदधौ किमपि शुष्कमेकं तृणं तृण स्वरूपमत्यल्पं दाहवस्तु तस्य पुरतः स्थापितवत् । ततश्चाग्निं जगाद, एतत् तृणं दह भस्मीकुरु इति, एवं यक्षेणोक्तोऽग्निः तत्पुरः स्थितं तृणं उपप्रेयाय उप समीपं प्रकर्षेण गतवान् गत्वा च सर्वजवेन स्वीय सर्वप्रकारेणवेगेन पुरःस्थिततृणं दग्धुं व्यापृतोऽपि न शशाक भस्मीकर्तुं न प्राभवत् । स तृणं दग्धुमस-

मर्थोऽभवन् वह्निस्ततः तस्मात् तृणादहनादेवहेतोः अस्म दपेक्षयाऽपि बलीयः किमप्येतत् यक्षरूपमित्यवधार्य गताभिमानः शीघ्रमेव निववृते तस्मात् यक्षसमीपदेशात् निवृत्तवान्, देवसमीपं गत्वा च देवानुवाच एतत् यक्षं किमिति विज्ञातुं विशेषेण निश्चेतुमहं नाशकम् न समर्थोऽभवमिति ॥६॥

'तस्मै तृणमित्यादि' इस पूर्वोक्त प्रकार से सर्वपदार्थ को जला देने की शक्ति मुझ में है इसप्रकार कहने वाले अग्नि के आगे उस यक्षरूप परमपुरुष ने एक तृण को रख गिया, अर्थात् सूखा हुआ एक तृण तृण स्वरूप अत्यल्प दाह्य वस्तु को अग्नि के आगे रख दिया और अग्नि से बोला-हे अग्नि ? यह एक घास है तुम इसे जलाओ अर्थात् भस्मसात् करो। जब इसप्रकार यक्ष ने कहा तब वह अग्नि आगे में रखा हुआ जो तृण था उस तृण के समीप में गया। तथा जा करके स्वकीय सर्ववेग सर्वथा सामर्थ्य से उस तृण को जलाने के लिये प्रयत्न किया। परन्तु उस घास को जलाने में समर्थ नहीं हुआ। अर्थात् यक्ष प्रदत्त घास को नहीं जला सका। तब वह वह्नि तृण दहन करने में समर्थ नहीं हुआ। इसका कारण यह समझा कि हमारी अपेक्षा से अत्यन्त अधिक बलवान् कोई यह यक्ष है यह निश्चित करके अभिमान को छोडकर अतिशीघ्र वहां से निवृत्त हो गया। अर्थात् जहां

वह यक्ष था वहां से निवृत्त हो करके देवताओं के समीप में जा करके देवगणों से कहा–हे देवो ? यह यक्ष क्या है ? इस बात को जानने में मैं समर्थ नहीं हूँ ॥६॥

अथ वायुमब्रुवन् वायवेतद्विजानीहि किमे तद्यक्षमिति तथेति ॥७॥

अग्निदेव के वापस आने पर इन्द्रादिदेवों ने वायुदेव से कहा हे वायुदेव ? उस यक्ष के पास जाकर ठीकसे जानें की यह विचित्र यक्ष कौन है इन्द्रादि की वातें सुनकर वायुदेव ने कहा ठीक है मैं अभी जानकर आता हूँ ॥७॥

अथ यक्षपार्श्वात् निवृत्तस्याग्नेर्वचः श्रवणानन्तरं देवा वायुमब्रुवन् उक्तवन्तः–हे वायो एतद्विजानीहि बुध्यस्व एतद् यक्षं किमिति । एवं देवैरुक्तो वायुरुवाच तथेति भवद्भिर्देवैर्यदुक्तं तत्करिष्यामीति प्रत्युक्तवानित्यर्थः ॥७॥

'अथ वायुमित्यादि' अथ यक्ष के समीप से प्रति निवृत्त अग्निदेव के प्रतिवचन को सुन लेने के वाद उन इन्द्रादिक देवगणों ने वायु से कहा हे वायु ? आप बहुत गतिशील देव हैं, आप इस बात का अन्वेषण कीजिये कि यह यक्ष कौन है ? क्या है ? । इसप्रकार जब देवों ने वायु से कहा तब वायु ने कहा 'तथेति' आपलोगों ने जो कुछ मुझसे कहा है उसका मैं स्वीकार करता हूँ.

तथा यक्ष का पता लगाता हूँ ॥७॥

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥८॥

वायुदेव उस यक्ष के पास वेग से गया आये उस वायु से यक्ष ने कहा तुम कौन हो ? लोकप्रसिद्ध वायु देवता मैं हूँ आकाश में विचरणशील मार्तरिश्वा नामक वायु हूँ ऐसा आप मुझे जान लें ॥८॥

स वायुः तद् यक्षमभ्यद्रवत् यक्षसमीपं गतवान् तं समीपमागतं वायुं यक्षरूपं ब्रह्म अभ्यवदत् साम्मुख्येन पप्रच्छ, कोऽसीति, एवं पृष्टोवायुरुक्तवान् वायुः अहमस्मीति, नामतो वायुरहं सामान्येन प्रसिद्धोस्मि । वै प्रसिद्धौ मातरिश्वा वा अहमस्मीति, मातरि आकाशे श्वसिति गच्छतीति मातरिश्वा विशेषेण आकाशादिप्रदेशाधिकरणगतिशीलत्वात् मातरिश्वेतिनाम्नाप्रसिद्धोहमस्मीति ।८।

'तदभ्यद्रवदित्यादि' देवगण से प्रेरित वायु यक्ष के समीप गये । तब अपने समीप आगत वायु को देखकर ब्रह्मरूप उस यक्ष ने पूछा तुम कौन हो ? इसप्रकार जब वायु को पूछा तब वायु ने कहा मैं वायु हूँ, सामान्यतः लोक में प्रसिद्ध नाम से मैं वायु हूँ । यहां वै शब्द प्रसिद्धि अर्थ का बोधक है । मैं मातरिश्वा हूँ, आकाश में जो चले उस वायु को मातरिश्वा कहते हैं अर्थात् विशेष रूपसे यानी आकाश प्रदेशरूप अधिकरण में सर्वदा

गमनशील होने से मातरिश्वा नाम से मैं प्रसिद्ध हूँ इसप्रकार वायु ने उस यक्ष से कहा ॥८॥

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं सर्वमाददीय यदिदं पृथिव्यामिति ॥९॥

यज्ञ ने कहा वायुदेव ? आप में क्या शक्ति है ? प्रश्न सुनकर वायु ने कहा यदि मैं चाहूँ तो परिदृश्यमान संसार में जो कुछ भी है सभी को खा सकता या उडा सकता हूँ ॥९॥

वायुना एवमुक्तं यक्षरूपं ब्रह्म पुनरपृच्छत् वायुम्। एवं नामद्वयेन विख्यापितस्वप्रभावे त्वयि किम् कीदृशं वीर्यं सामर्थ्यमस्ति, किं किं कार्यं कर्तुं त्वं समर्थोऽसीतिभावः। एवं पृष्टो वायुरुक्तवान् पृथिव्याम् इदं दृश्यमानं यत् किञ्चित् स्थावरजङ्गमात्मकं वस्तु तत्सर्वमाददीय आदायान्तरिक्षेगमनं कुर्याम् सर्वमुड्डाययितुं समर्थोऽहमस्मीति स्वसामर्थ्यं प्रकटितवान् ॥९॥

वायुदेव के कहने के वाद यक्षरूप से व्यवस्थित ब्रह्म परमपुरुष ने पुनः वायुदेव से कहा हे वायो ? इसप्रकार नामद्वय से प्रख्यात स्वभाव वाले तुम में क्या सामर्थ्य है अर्थात् किस किस काम को करने में तुम समर्थ हो ? इसप्रकार जब परमपुरुष ने पूछा तब वायु ने कहा-इस पृथिवी में परिदृश्यमान जो कुछ यह स्थावर जङ्गमात्मक पदार्थ समुदाय हैं उन सब को पकड करके आकाश में मैं जा सकता

हूँ, अर्थात् परिदृश्यमान सब सावयव वस्तु को मैं आकाश में उडा दूँ एतादृश सामर्थ्य मुझ में है। इसप्रकार वायु ने अपनी शक्ति बताई ॥९॥

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति १०

वायु के आगे तृण रखकर यज्ञ ने कहा इस छोटेसे तृण को ग्रहण या उडा दो उस तृण के प्रति वायु लपटा पूरी शक्ति लगाई पर उसे उडा नहीं सका अतः वह लज्जित होकर वहां लौटा एवं कहा कि यह यक्ष कौन है मैं जान नहीं सका ॥१०॥

तस्मै एवं सर्वादानसामर्थ्यं प्रकटितवते वायवे तदनुग्रहार्थं तृणं तत्पुरतः निदधौ स्थापितं कृतवत्। स्थापयित्वा चोवाच-एतत् पुरो निहितं तृणं आदत्स्व एतस्मात् स्थानात् विचालय, एवमुक्तो वायुः तत्तृणं सर्वजवेन सर्वेण स्वगतेन वेगेन उपप्रेयाय प्रकर्षेण समीपं गतवान् तृणं चालयितुं प्रायतत परन्तु तत्पुरः स्थितं तृणमादातुं विचालयितुं न शशाक न समर्थोऽभूत्। सः वायुः ततः तृणानादानादेव गतगर्वः द्रुतं यक्षसमीपात् निववृते देवसमीपमागतवान्। आगत्य च देवानुवाच यदेतत् पुरोगतं यक्षं तत्किमिति विशेषतो ज्ञातुं नाहं समर्थोऽभूवम् इति ॥१०॥

मुझ में सब वस्तु को उडा देने की शक्ति है इस प्रकार स्वकीय सामर्थ्य को ख्यापित करनेवाले वायुदेव के ऊपर अनुग्रह करने के लिये उस परमपुरुष ने वायु देव के आगे एक तृण रख दिया और रखकर बोले-हे वायु देव? यह तुम्हारे आगे में व्यवस्थित जो तृण है उसे आप उडाइये अर्थात् इस स्थान से तृण को विचलित कीजिये। जब, उस यक्ष ने ऐसा कहा तब वह वायु स्वकीय सर्ववेग से युक्त हो करके तृण के समीप गया उस तृण को उडाने के लिये परन्तु वायु उस पुरःस्थित तृण को विचलित करने में उडाने में समर्थ नहीं हुआ। तब वह वायु तृण को नहीं उडाने के कारण विगत अभिमान हो करके यक्ष के समीप से निवृत्त हो करके देवताओं के समीप में आ गया और देवताओं के समीप आ करके वायु बोला जो यह आपलोगों के सामने उपस्थित यक्ष है उसे विशेष रूपसे जानने में मैं समर्थ नहीं हो सका हूँ ॥१०॥

अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ।११।

वायुदेव की असफलता के वाद सभी देवता इन्द्र से कहे कि हे मघवन्? यह दिव्य यक्ष कौन है इसे अच्छी तरह से जानिये इन्द्र ने कहा ठीक है वह यक्ष कि ओर वेग से चला पर समीप आते इन्द्र को

देख वह यक्ष उस स्थान से अन्तर्धान हो गया ॥११॥

अथ विगतगर्वस्य यक्षदेशात् परावृत्तस्य वायोर्य क्षाविज्ञानावबोधकवचनश्रवणानन्तरं देवा इन्द्रं देवराजमब्रुवन् उक्तवन्तः । हे मघवन् इन्द्र एतद् विजानीहि किमेतद् यक्षमिति । पूर्ववद् व्याख्या कार्या । देवैर्निवेदितो देवेन्द्रः तथेति-भवदुक्तं करिष्यामीत्युक्तवान् । एवमुक्त्वा महेन्द्रः तद् यक्षमभ्यद्रवत् यक्षसमीपं गतवान् । इन्द्रस्य आगमनानन्तरं तस्मात् इन्द्रात् तिरोदधे अन्तर्हितमभूत् तद्यक्षरूपमिति शेषः । यद्वा तस्मात् यस्मिन् प्रदेशे यक्षरूपं ब्रह्म पूर्वं दृश्यमानमासीत् तस्मात्प्रदेशात् तिरोदधे अन्तर्धानं चकार यक्षरूपमित्यर्थः । इन्द्रो हि देवराजः नास्य मानभङ्गः वह्निवाय्वोरिव भवतु इति विचार्यैव अन्तर्धानमाजगामेतिभावः ॥११॥

इसके वाद विगलित है अभिमान जिसका तथा जिस प्रदेश में यक्ष था उस प्रदेश से लौटकर आये हुए यक्ष को मैं नहीं जान सका एतादृश वायु देव के वचन को सुनकर देवतालोग देवराज के प्रति बोले-हे मघवन्? आप जा करके यह समझें कि यह यक्ष क्या है? इसका व्याख्यान पूर्ववत् समझें । इसप्रकार जब देवताओं ने कहा तब तथेति ऐसा इन्द्र ने कहा अर्थात्

मैं जा करके पता लगाता हूँ कि यह यक्ष क्या है ऐसा देवराज इन्द्र ने कहा। इसप्रकार देवताओं को कहकर वह इन्द्र यक्ष के समीप गया। तब इन्द्र देव के आगमन के वाद समीपस्थ इन्द्र देव को देख करके वह यक्ष वहां से तिरोहित हो गया। यद्वा उस प्रदेश से अर्थात् जिस प्रदेश में यक्ष रूप ब्रह्म दृश्यमान थे उस प्रदेश से वह यक्षरूप ब्रह्म अन्तर्हित हो गये। यह इन्द्र देवराज है अग्नि वायु के समान मानभङ्ग न हो ऐसा विचार करके वह यक्षरूप ब्रह्म अन्तर्धान हो गये ॥११॥

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं तां होवाच किमेतद्यक्षमिति ॥१२॥

卐 इति केनोपनिषदि तृतीयः खण्डः 卐

यक्ष के अदृश्य होने पर वह इन्द्र उसी स्थान पर आकाश में ही सुवर्ण सम्बन्धी दिव्य आभूषणों से समलंकृत होकर बहुत शोभा पार ही पुरुषाकाररूपा श्रीसीताजी के पास नियत रूपसे पहूँच गया उन पुरुषाकाररूपा श्रीसीताजी से इन्द्र ने अतिआदर से पूछा की हे देवि? यह यक्ष कौन था ॥१२॥

स इन्द्रः तस्मिन्नेव पूर्वयक्षाधिष्ठिते एव आकाशे अवकाशप्रदेशे यक्षरूपं क्व गतमित्यादि विमृशन् विस्मितमनाः सन् तस्थौ इति रोषात् ततः कियति

काले प्रादुर्भूता स्त्री यक्षेण इन्द्रास्यानुग्रहार्थं प्रेषिता, दृष्ट्वा च ताम् स्त्रियम् आजगाम तत्समीपं गतवान् इन्द्रः यक्षस्य वृत्तं प्रष्टुकामः। आगत्य च हैमवतीं देदिप्यमानसुवर्णादिभूषणोपेतां 'हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्त्रजाम्। चन्द्रां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जात वेदो म आवह' 'आर्द्रां यष्करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्। सूर्यां हिरण्यमयीम्' इत्यादिश्रीसूक्तोक्तेः। सुवर्णाद्यलंकृतत्वेन बहुशोभमानामधिककान्तिमतीम्। अत्र 'उ' 'मा' इतिपदद्वयं बोध्यम्। उ इति निश्चय रूपेण 'तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः' इत्युक्तेर्निश्चयार्थकत्वात्तस्य। माम् पुरुषाकारस्वरूपां श्रीरामवल्लभामुवाच सविनयं पृष्टवान् हेतिसादरार्थे किमेतद् यक्षमिति, अत्र प्रदेशे पूर्वमस्माभिरपि दृश्य मानमिदानीञ्चान्तर्भूतमेतद् यक्षरूपं किम् देवेषु कतमत् इति ॥१२॥

卐 इति केनोपनिषदि आनन्दभाष्ये तृतीयः खण्डः 卐

इसके वाद अर्थात् यक्ष के तिरोहित हो जाने के वाद वह इन्द्र देवराज उस आकाश में अर्थात् पूर्व यक्षाधिष्ठित आकाश प्रदेश में वह यक्षरूप कहां गया इत्यादि रूपसे विचार करते हुए विस्मित मन हो करके स्थिर रहे। तदनन्तर कुछ काल के वाद इन्द्र देवराज के ऊपर

अनुग्रह करने के लिये यक्षरूप ब्रह्म से प्रेषित एक स्त्री उसी आकाश प्रदेश में प्रादुर्भूत हुई । वहां आई हुई उस स्त्री को देख करके उसके समीप में इन्द्र देवराज गये उस यक्ष के वृतान्त को पूछने की इच्छा से । वह स्त्री कैसी थी ? इस जिज्ञासा के उत्तर में श्रुति कहती है- **'बहुशोभमानामित्यादि'** हैमवतीम् यानी देदिप्यमान सुवर्ण मणि आदि आभूषणों से युक्त होकर बहुत शोभायमान या निश्चय रूपसे अधिक कान्ति वाली थी। इस श्रुति में उ एवं मा ये दो शब्द हैं उ का अर्थ निश्चय होता है **'तदुचन्द्रमाः'** श्वे.उ. ४।२ में उ का प्रयोग निश्चयार्थ में हुआ है माम् पुरुषाकार स्वरूपा श्रीराम वल्लभा का बोधक है यों कोशानुसार मा रमा पर्यायवाची शब्द हैं आनन्दभाष्यकारजी ने श्रीसीताजी को जीवों के सायुज्य हेतु पुरुषाकार के रूपमें निर्देशित किया है- **'सीतापुरुषकारार्था'** २।२६ श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर में अतः उक्त अर्थ शास्त्र सम्मत है । उसे देवराज इन्द्र ने पूछा । ह शब्द सादरार्थक है । यह यक्ष कौन था । अर्थात् इस प्रदेश में पहले हमसे दृश्यमान था । अभी अदृश्य हो गया । वह कौन था । इसप्रकार इन्द्र देव ने अनुग्रहार्थ आई श्रीसीताजी से आदरपूर्वकपूछा ॥१२॥

ॐ अथ चतुर्थः खण्डः ॐ

सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति १

इन्द्र के पूछने पर उस देवी ने स्पष्ट रूपसे कहा वह सर्वेश्वर परब्रह्म श्रीरामजी हैं एवं यह भी निरूपण किया कि परब्रह्म श्रीरामजी के इस विजय से तुम देववर्ग विशेष महिमा प्राप्त किये हो देवी श्रीसीताजी के उपदेश करने पर ही इन्द्र ने जाना क्री वह अन्तर्हित यक्ष परब्रह्म श्रीरामजी हैं ॥१॥

सा हैमवती उ मा देवी ब्रह्मेति उवाच, यद् दृष्टं पूर्वं भवद्भिर्यक्षरूपम् तद् ब्रह्म स्वरूपतो गुणतश्च निरतिशयबृहत्त्वविशिष्टं ब्रह्मैव दृष्टम् इति उवाच प्रोक्तवती । ह निश्चयेन । हे इन्द्र यूयं देवाः ब्रह्मणः निरतिशयबृहत्त्ववतः सर्वान्तर्यामिनः परमपुरुषस्य वै निश्चयेन विजये महीयध्वम् अस्मदनुप्रविष्टः ब्रह्मकृत एवायं विजय इति कृत्वा महीयध्वम् महिमानं स्तुति पूजादिलक्षणं प्राप्नुत, स्वकृतविजयनिमित्तं यत् पूर्वमा महीयध्वं तदधुना त्यजत, स्वविजयनिमित्तं गर्वमुञ्चते तिभावः । ततः ह निश्चयेन एव तस्मादुमावाक्यादेव ब्रह्म विदांचकार यदेतत् यक्षरूपमासीत् तद् ब्रह्मैव यक्षरूपेणाविर्भूतमासीदिति ज्ञातवान् इन्द्र इति शेषः ॥१॥

जब विनयपूर्वक देवराज इन्द्र ने आकाश प्रदेश में स्थित हैमवती विविध सुवर्णालंकारों से शोभित श्रीसीता जी से पूछा कि यह मेरे सामने उपस्थित तथा मेरे आ जाने पर अन्तर्हित वह यक्ष क्या है ? क्या कोई देव विशेष है अथवा कोई अन्य है ? ऐसा जब प्रश्न किया तब वह हैमवती देवी बोली-हे इन्द्र ? जब आपने पहले उस यक्ष को देखा, वह यक्ष ब्रह्मरूप था जो स्वरूप से तथा गुण से निरतिशय बृहत्व गुण विशिष्ट हो उसे ब्रह्म कहते हैं अर्थात् आपने जिसे देखा वह ब्रह्म-परमपुरुष श्रीरामजी थे। यहां 'ह' शब्द निश्चयार्थक है। हे इन्द्र ? आप देवतालोग निरतिशय बृहत्व धर्म युक्त सर्वान्तर्यामी परमपुरुष के निश्चयतः विजय होने से महिमा को प्राप्त किये हैं अर्थात् मदनुप्रविष्ट देवानुप्रविष्ट ब्रह्मकृत यह विजय है यह करके आपलोग स्तुति पूजादि लक्षण महिमा को प्राप्त किये हैं। देवकृत विजय निमित्तक जो पूर्व में अपनी महिमा को समझे थे उसे छोडिये अर्थात् देवविजय निमित्तक अभिमान को छोडिये। इसके वाद निश्चयतः उस श्रीसीतोपदिष्ट वाक्य से ब्रह्म को जाना। अर्थात् जो यह यक्षरूप था वह ब्रह्मरूप श्रीरामजी ही थे जो कि हमलोगों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये यक्ष रूप से आविर्भूत हुए थे इसप्रकार इन्द्र ने जाना ॥१॥

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान्देवान् यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्शुस्ते ह्येनत् प्रथमोविदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥२॥

अग्नि वायु एवं इन्द्र ने ही उस परब्रह्म को नियत रूपसे नजदीक से देखा तथा स्पर्श किया यक्षरूपधारी ब्रह्म का प्रथम दर्शन इन तीन देवों ने ही किया एवं जाना की वह परब्रह्म श्रीरामजी है अतः अग्नि वायु तथा इन्द्र अन्य देवों के अपेक्षा अतिमहिमाशाली प्रसिद्ध हुये ॥२॥

वै इति निश्चये तस्माद्वै तस्मादेव एते अग्नि वायुमहेन्द्राः यतो हेतोः अग्निः वायुश्च यक्षरूपेण ब्रह्मणा सम्वादं चक्रतुः इन्द्रश्चोमावाक्यात् निश्चयं प्राप्तवान् तस्मात् हेतोरन्यान् वरुणकुबेरादीन् देवान् अतितरामिव अतिशयेन अतिक्रम्येव वर्तन्ते इतिशेषः; वरुणादिदेवेभ्यः अग्निवायुमहेन्द्राः महिम्ना अधिका इत्यर्थः । इवेति निपातः एवार्थः, अनर्थो वात्र बोध्यः। के ते देवा इत्यत्राह यदग्निर्वायुरिन्द्रः यत् शब्दः प्रत्येकमन्वेति, यः अग्नि यो वायुः य इन्द्रः- इत्यर्थः । छान्दसः यदित्यत्र लिङ्गव्यत्ययः । ते अग्नीन्द्रवायवः हि निश्चयेन एतत् यक्षरूपेणावस्थितं ब्रह्म नेदिष्ठम् अतिशयसमीपं पस्पृशुः तत्समीपं गता इत्यर्थः । यद्वा पस्पृशुः परामर्शं कृतवन्तः । यद्वा पस्पृ

शुः स्पर्शं कृतवन्तः स च स्पर्शः अग्निवाय्वोः समीप गमनयक्षसम्वादरूपः, इन्द्रस्य तु समीपगमनोमा-सम्वादरूपः, अग्निवायुमहेन्द्राणामितरदेवापेक्षया-धिकमहिमत्त्वे कारणान्तरमाह-ते अग्निवायुमहेन्द्राः हि यस्मात् एतत् ब्रह्म प्रथमः छान्दसः लिङ्गव्यत्यासः प्रथमम् इतरदेवापेक्षया पूर्वमित्यर्थः विदाञ्चकार छान्दसः वचनव्यत्यासः विदाञ्चक्रुः ज्ञातवन्तः । तत्र इन्द्रस्य देवीश्रीसीतावचनाद् ज्ञानम् अग्निवाय्वोस्तु इन्द्र-वाक्यादिति विवेकः ॥२॥

मन्त्रघटक जो 'वै' शब्द है उसका निश्चयरूप अर्थ है। इसी कारण से ये सब अग्नि वायु महेन्द्र देवों ने जिस कारण से अग्नि तथा वायु यक्षरूप ब्रह्म के साथ वार्तालाप किये और इन्द्र देवराज ने हैमवती श्रीसीताजी के वाक्य से ब्रह्म स्वरूप निश्चय को प्राप्त किया। इसी हेतु से ये तीनों देव अन्य वरुण कुबेरादिक देवगण को अतिशयेन अतिक्रमण करके स्थित हैं। अर्थात् वरुणादि देवों की अपेक्षया अग्नि वायु महेन्द्र अत्यधिक महत्त्व शाली हैं। 'इव' यह निपात है जो कि एवकारार्थक है। अथवा उस निपात का यहां कुछ अर्थ नहीं है निरर्थक है। कौन वे देव हैं जो इतर देवापेक्षया अधिक महत्त्व शील हैं ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-'यदग्निर्वा

युरिन्द्र' इति। यहां जो '**यत्**' शब्द है उसका प्रत्येक में अन्वय है जो यह अग्नि है जो यह वायु है तथा जो यह इन्द्र है इसप्रकार। '**यदग्निः**' यहां पुल्लिंग न कह करके नपुंसक का प्रयोग है वह छान्दस होने से लिङ्ग व्यत्यय है। वे इन्द्र अग्नि वायु हि निश्चयतः इस यक्ष रूपसे व्यवस्थित ब्रह्म को नेदिष्ठ अतिसमीप में स्थित ब्रह्म के समीप में गये। यहां '**पस्पर्शुः**' तद्विषयक परामर्श अर्थात् ब्रह्म विषयक विचार किया। अथवा '**पस्पर्शुः**' ये सब ब्रह्म का स्पर्श किये। वह स्पर्श अग्नि वायु को तो यक्ष के समीप में गमन तथा यक्ष के साथ वार्तालापरूप है और इन्द्र को यक्ष समीप गमन तथा हैमवती श्रीसीताजी के साथ संवाद रूप है।

अग्नि वायु महेन्द्र के इतर देवापेक्षया अत्यधिक महिमाशाली होने में कारण बतलाते हैं–'**तेह्येनदित्यादि**' वे अग्नि वायु महेन्द्र '**हि**' जिस कारण से एनत् इस ब्रह्म को प्रथमः यहां छान्दस लिङ्ग का व्यत्यास है अर्थात् प्रथमतः इतर देवापेक्षया प्रथमतः पहले विदाञ्च कार यहां वचन व्यत्यास समझें। वे लोग सर्वप्रथम ब्रह्म को जाने यानी इन लोगों ने जाना। उसमें इन्द्र तो उ मा वाक्य से ब्रह्म को जाना और अग्नि तथा वायु ने इन्द्र के वाक्य से जाना ॥२॥

तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान् देवान् स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श स ह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥३॥

उस इन्द्र ने इस परब्रह्म को अतिपास से स्पर्श किया यानी जाना एवं नियत रूपसे अन्यों ने पहले यह परब्रह्म श्रीरामजी हैं ऐसा जाना इसलिये इन्द्र अन्य अग्नि तथा वायु से अतिश्रेष्ठ है ॥३॥

अग्निवाय्वपेक्षयाऽपि इन्द्रस्याधिकमहत्वं साधयति तस्मात्, यस्मात् यक्षरूपब्रह्मणः समीपदेशगामिषु अग्निवायुमहेन्द्रेषु इन्द्र एवप्रथममुमावाक्यात् प्रथम ब्रह्म ज्ञातवान् तस्माद्धेतोः वै निश्चयेन इन्द्रः अन्यान् स्वव्यतिरिक्तान् अग्निवायुवरुणादीन् अतितरामिव अतिशयेन अतिक्रम्य वर्तते ऐश्वर्यादिनेत्यर्थः। स इन्द्रः हि यस्मात् एतत् ब्रह्म नेदिष्ठं पस्पर्स तत्समीपं गतवान् उमादेव्या सह ब्रह्मविषयकसम्वादञ्च कृतवान्। अन्य मपि श्रेष्ठत्वे हेतुमाह-स इन्द्रः हि यस्मात् एतत् ब्रह्म प्रथमम् अग्निवायुभ्यां यक्षेण कृतसम्वादाभ्यामपि पूर्वम् उमावाक्याद् ब्रह्मेति विदाञ्चकार यदेतद् दृष्टं यक्षस्वरूपमन्तर्हितं तद् ब्रह्मैवेति विदितवान्। सर्वतः प्रथमं ब्रह्मज्ञानं इन्द्रस्यैव जातमतः इन्द्रः सर्वेभ्यो देवेभ्यो गरीयान् ऐश्वर्यबलबुद्ध्यादिभिरितिभावः ॥३॥

अग्नि तथा वायुदेव की अपेक्षा से भी इन्द्र को

अधिक महिमाशाली होने में कारण बतलाते हैं-**'तस्माद्वा'** इत्यादि से। जिस कारण से यक्षरूप ब्रह्म के मध्य में सर्वप्रथम उमा वाक्य से इन्द्र ने ब्रह्म को यथावत् ब्रह्मस्वरूप को जाना-**'तस्माद्धेतोः'** इसी कारण से वै शब्द निश्चयार्थक है अन्य स्वव्यतिरिक्त अग्नि वायु वरुणादिक इतर देवों के ऐश्वर्यादिक से अतिक्रमण करके रहता है। उस इन्द्र ने जिसलिये इस ब्रह्म के समीप किया तथा उमादेवी के साथ ब्रह्म विषयक सम्वाद किया इसलिये इतर देवापेक्षया इन्द्र श्रेष्ठ हैं। सर्वापेक्षया इन्द्र के श्रेष्ठ होने में कारणान्तर भी बतलाते हैं-**'सह्ये नदित्यादि'** उस इन्द्र ने जिस लिये इस यक्षरूप ब्रह्म को सर्वप्रथम अर्थात् ब्रह्म के साथ सम्वाद करनेवाले अग्नि तथा वायु के भी पहले उमा वाक्य से ब्रह्म को जाना अर्थात् पूर्व में देखा हुआ पुनः अन्तर्हित जो यह है वह ब्रह्मरूप श्रीरामजी ही हैं इसप्रकार से जाना। सर्वप्रथम ब्रह्म का ज्ञान इन्द्र को ही हुआ इसलिये ऐश्वर्य बल बुद्धि से सर्वदेवापेक्षया श्रेष्ठ इन्द्र ही हैं। यद्यपि अग्नि वायु को यक्षरूप ब्रह्म के साथ वार्तालाप हुआ तथापि उन दोनों ने यह ब्रह्म है ऐसा नहीं जाना, किन्तु इन्द्र ने उमा श्रीसीताजी के वाक्य से सर्वप्रथम ब्रह्म को जाना तदनन्तर इन्द्र द्वारा अग्नि वायु को ब्रह्मज्ञान हुआ।

तत्पश्चात् इतर देवों को ज्ञान हुआ । इसलिये सर्वश्रेष्ठ इन्द्र है, तदपेक्षया कनिष्ठ अग्नि वायु तदपेक्षया इतर देव कनिष्ठ हैं ॥३॥

यस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदा३ इतीतिन्यमीमिषदा३ इत्यधिदैवतम् ॥४॥

उस परब्रह्म का यह आराधनारूप आदेश है कि जो यह विजली के चमक के समान दर्शन प्रदानकर छुप जाता है एवं अन्य आदेश यह भी है की आँख के पलक के समान अधिदैवत-देवताओं के पास ब्रह्म का दर्शन है यानी यह आधिदैविक स्वरूप है ॥४॥

तस्य इन्द्रादीनां पुरतः सहसाऽऽविर्भूय तिरोहि तस्य ब्रह्मणः एष वक्ष्यमाणः आदेशः उमोपदेशः यत् यस्मात् । एतद् ब्रह्म । विद्युत इत्यत्र एकत्वे बहुवचनं छान्दसम्, आ शब्दश्चोपमार्थः तस्य विद्युत् इत्यनेनान्वयः । तथा च विद्युदाव्यद्युतत् इत्यन्वयः विद्युदिव देवानामग्रे यक्षरूपेण ब्रह्म सहसाऽऽविर्भूतं सत् व्यद्युतत् यस्मात् तस्मात् विद्युत् इव दीप्तिमद् ब्रह्म समुपास्यमित्यर्थः । इतिशब्दः आदेशस्वरूपसूचनार्थः इत्ययमादेश एव इत्यर्थः । इत् शब्दः समुच्चयार्थः तेन अपरोऽप्यादेशः समुच्चीयते स क इत्यत्राह न्यमी मिषत् आ, अत्रापि आ शब्दः उपमार्थः तस्य च वि द्युत् इत्यनेनान्वयः तथा च विद्युदिव न्यमीमिषत् ब्रह्म

यथा विद्युत् सकृत् स्वस्वरूपं दर्शयित्वा क्षणादेव निलीना भवति तदा यथा क्वचित् चक्षुर्निमेषं कृतवान् इति प्रतीयते चक्षुषो निमीलने यथा किमपि न प्रकाशते तथा च विद्युतोऽन्तर्हितत्वे तत्प्रकाशाभावः। तथा इन्द्रागमनसमये ब्रह्म तिरोहितमभूत् इति न्यमीमिषत् इन्यनेनोच्यते विद्युत् इव ब्रह्म सहसा तिरोहितमभवत् इत्यर्थः। अयं द्वितीयः आदेशः। एवं विद्युदुपमानेन सह साविर्भावतिरोभावशालिब्रह्म द्योतनाद्द्योतन गुणवत्तयोपासनीयम्। इति अधिदैवतम्। देवतोपमानेन ब्रह्मणः उपासनीयादेशः कृतः। देवता तु अत्र बाह्य भूतरूपा विद्युत् एव। न्यमीमिषत् इत्यत्र स्वार्थेणिच्। यद्वा विद्युत इति द्वितीया बहुवचनम्। त्वच्चादिरूपार्थबोधकम् तथा च विद्युतः विद्युदादीन् तेजो धातून् आ शब्दोऽपक्षे समन्तादित्यर्थस्तेन आ समन्तात् एतत् ब्रह्म व्यद्युतत् अदीपयत् विद्युदाधीनं तेजः पदार्थानामपि प्रकाशकं एतद् ब्रह्म इत्येवं रूपेण उपास्यमितिभावः। आन्यमिमिषत् समन्तात् विद्युदादीन् प्रकाशकानपि न्यमीलयत् ब्रह्म हि सर्वशक्तिमत्तया तेषां निमीलपनमपि सर्वतः कृतवत्, अतः तेजोधातूनां दीप्तिमतामपि निमीलनकारकं ब्रह्मेत्येवं रूपेण उपास्यम्, इत्यादेशद्वयमत्रानुसन्धेयम् ॥४॥

इन्द्रादिक देवों के आगे में आविर्भूत हो करके तिरोहित उस ब्रह्म का यह वक्ष्यमाण आदेश है उमा का उपदेश है। जिसलिये यह ब्रह्म विद्युत् यहां एकत्व में जो बहुवचन का प्रयोग है वह छान्दस है और आ शब्द उपमानार्थक है और उसका विद्युत् के साथ अन्वय है। विद्युत् के समान प्रकाशित हुआ ऐसा अन्वय है। विद्युत् के समान देवताओं के आगे यक्षरूप से वह ब्रह्म सहसा आविर्भूत होता हुआ प्रकाशित हुआ, जिसलिये अतः विद्युत् के समान प्रकाशशील ब्रह्म श्रीरामजी समुपास्य हैं यह अर्थ होता है। इति शब्द जो मन्त्रघटक है वह आदेश स्वरूप का सूचक है। यह आदेश ही है यह अर्थ है और इत् शब्द समुच्चयार्थक है इसलिये अपर आदेश भी समुचित होता है यह आदेश है तथा आदेशान्तर भी उस ब्रह्म का है। वह आदेशान्तर कौन है जिसका समुच्चय होता है इस जिज्ञासा में कहते हैं- **'न्यमीमिषदा'** यहां भी आ शब्द उपमानार्थक है। तब यह अर्थ होता है विद्युत् के समान ब्रह्मनिमेषित हुआ। जिस प्रकार से विद्युत् सकृत् एक वार ही स्वकीय स्वरूप को बतला करके क्षण भर में ही जब निलीन छिप जाती है तब जिसतरह किसी स्थल में चक्षुनिमेष किया गया ऐसा प्रतीत होता है। चक्षु के निमीलन होने

से जिस तरह कोई भी पदार्थ प्रकाशित नहीं होता है उसी तरह विद्युत् के अन्तर्हित हो जाने पर उसके प्रकाश का अभाव होता है । उसी तरह इन्द्र के आगमन समय में यक्षरूप ब्रह्म सहसा तिरोहित हो गये, यह वस्तु-**'न्यमीमिषत्'** इस शब्द से कहा जाता है अर्थात् विद्युत् के समान ब्रह्म सहसा तिरोहित हो गये ।

इसके वाद द्वितीय आदेश इसप्रकार है-इस तरह विद्युत् दृष्टान्त उपमान से सहसा आविर्भाव तिरोभाव शाली ब्रह्म द्योतन प्रकाशन गुण विशिष्ट रूपसे समुपास नीय है । **'इत्यधिदैवतम्'** यह ब्रह्म का अधिदैवत देवता विषयक रूप है । देवता के उपमान से ब्रह्म की उपास नीयता का आदेश उपदेश किया गया । यहां देवता बाह्य भूत स्वरूप विद्युत् ही है । न्यमीमिषत् स्वार्थ में णिच् प्रत्यय है पर व्यापार में नहीं । यद्वा **'विद्युतः'** यह द्वितीया बहुवचनान्त प्रयोग है वह आदि रूप अर्थ का बोधक है । विद्युदादिक तेजो धातु के आ शब्द समन्तात् इस अर्थ का बोधक है । तब यह अर्थ होता है कि आ समन्तात् यह ब्रह्म प्रदीप्त कराया, तेजःस्वभावक विद्युदादि पदार्थ का भी प्रकाशक यह ब्रह्म है इस प्रकार से यह ब्रह्म उपासना करने के योग्य हैं । **'आन्यमी मिषदिति'** विद्युदादिक प्रकाशक वस्तु का भी निमिलित

करनेवाले ब्रह्म हैं अर्थात् सर्वशक्तिमान् ब्रह्म प्रकाशक वस्तु को भी निमिलित करते हैं। अतः प्रकाशरूप तेजो धातु विद्युदादिक के भी निमीलनकारक ब्रह्म हैं इसप्रकार से ब्रह्म समुपासनीय हैं। इसप्रकार से दो प्रकार का आदेश है ऐसा अनुसन्धान करें ॥४॥

एवमधिदैवतमादेशं दर्शयित्वा अध्यात्ममपि आदेशं दर्शयति-

अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च । मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं सङ्कल्पः ॥५॥

अधिदैवत के उपदेश के वाद अध्यात्म यानी शरीर में ब्रह्म तत्त्व का उपदेश करते हैं जो यह मन है वह अनिरुद्ध नामधारी श्रीरामजी से प्रेरित होकर अपने पदार्थ को पाता हो ऐसा लगता है पर यह मन अपने विषय को वरावर ग्रहण नहीं कर पाता है तथा सर्वदा संकल्प विकल्प में संलग्न यह मन अनिरुद्ध नामधारी श्रीरामजी से प्रेरित होकर नजदीकी वनकर विषयों को याद किया करता है ॥५॥

अथ देवतायां विद्युत्स्वरूपायामुपमानप्रदर्शनानन्तम् अध्यात्मम् आत्मनि इति अध्यात्मम् आत्मशब्दः शरीरवत् शरीरान्त इत्यर्थस्तथा च शरीरे ब्रह्मण उपमानोपदेशः त्रि इति 'अध्यात्मम्' इति वाक्यस्यार्थः। अनेन प्रेरित मन एतत् गच्छति यत् तदिव अध्यात्ममुपदेश इत्यन्वयो योज्य अनेन प्रेरितं मनः मनोरूप

मान्तरमिन्द्रियम्, एतद् ब्रह्मैवगच्छति विषयीकरोति यत् तदिव ब्रह्मणा प्रेरितस्य मनसः ब्रह्म प्रतिगमन मिव यक्षरूपं ब्रह्मआविर्भूतमित्युपमानोपदेशः यथा ब्रह्म णाप्रेरितं मनः ब्रह्मविषयीकरोति क्षणम् अनन्तरं च ततो निवर्तते न चिरकालपर्यन्तं ब्रह्मविषयीकर्तुं शक्नोति अतिचञ्चलत्वात् तथैव किञ्चित्कालमेव देवानां पुरस्तात् प्रकटितमभूत् अतः ब्रह्मप्रतिमनो गमनमाविर्भूतस्य यक्षरूपस्य ब्रह्मणः मनसश्च ब्रह्म गमनं शरीरे एव भवति ।अतः अयमुपमानोपदेशः अध्यात्ममित्युच्यते येन च ब्रह्मणा प्रेरितं मनः गच्छति तद् ब्रह्मोपास्यमितिभावः ।यद्वा अनेन ब्रह्मणा प्रेरितं मनः यत् ब्रह्मप्रतिगच्छतीव वस्तुतो न गच्छति 'यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतमि'तिश्रुतेः ।तद् ब्रह्म उपास्यमित्यर्थः ।ननु मनः यदि वस्तुतो ब्रह्म न विषयी कुर्यात् कथमुपासकाः ब्रह्मध्यानं कुर्युरत आह-अनेनैव ब्रह्मणा अनिरुद्धस्वरूपेण अनुगृहीतं सत् मनः एतत् ब्रह्म उपस्मरति विषयीकरोति अभीक्ष्णं पौनः पुन्येन, भृशं वा, तन्मनः किं स्वरूपमित्यत्राह संकल्पः संकल्प यतीति सङ्कल्पम् सङ्कल्पजनकस्वरूपमित्यर्थः । एतेन यदनुग्रहे ब्रह्मस्मरणसमर्थं मनः अननुग्रहे च तदसमर्थं तद् ब्रह्मोपास्यमित्यादेशः व्याकृतो भवति । ब्रह्मातिरे

केऽविषये ब्रह्मानुग्रहाऽननुग्रहाभ्यामेव मनः स्मरणात्स्मरणकारिभवतीत्युपलक्षणतोऽवगन्तव्यम् ॥५॥

उपर्युक्त प्रकार से यक्षरूपी ब्रह्म का अधिदैवत देवता विषयक आदेश उपदेश को बतला करके ततः पर अध्यात्म आत्म सम्बन्धी आदेश उपदेश को बतलाने के लिये कहते हैं-'**अथाध्यात्ममिति**' विद्युत्स्वरूप देवता में उपमान सादृश्य प्रदर्शन के अनन्तर में अध्यात्म आदेश कहते हैं आत्मसम्बन्धी आदेश । यहां आत्म शब्द आत्मीय शरीरपरक है । शरीर में ब्रह्म का उपमानोपदेश का अध्यात्मोपदेश है । इससे प्रेरित हो करके अमुक के प्रति जाता है तत्सदृश यह अध्यात्मोपदेश है इसप्रकार अन्वय करें । इससे प्रेरित मन अर्थात् आन्तर इन्द्रिय मन इस ब्रह्म के प्रति जाता है अर्थात् इस ब्रह्म को विषय करता है जो उसके समान ब्रह्म से प्रेरित मन का ब्रह्म के प्रति गमन के समान यक्षरूप जो ब्रह्म वह आविर्भूत हुआ है । इसप्रकार उपमानोपदेश है । जिस तरह ब्रह्म से प्रेरित मन क्षण पर्यन्त ही ब्रह्म को विषय करता है अनन्तर काल में ब्रह्म से निवृत्त हो जाता है किन्तु चिरकाल पर्यन्त ब्रह्म के विषय करने में समर्थ मन नहीं होता है क्योंकि अत्यन्त चंचल है उसीप्रकार से कुछ अत्यल्प काल के लिये ही ब्रह्म देवताओं के

आगे में प्रकट हुए। अतः ब्रह्म के प्रति मन का गमन है। आविर्भूत यक्षरूप जो मन उसका तथा मन का ब्रह्म के प्रति गमन शरीर में ही होता है। इसलिये यह उपमानोपदेश अध्यात्मोपदेश कहा जाता है। जिस ब्रह्म से प्रेरित होकर मन स्वविषय के प्रति जाता है तादृश जो ब्रह्म वह उपासनीय हैं। यद्वा इस ब्रह्म से प्रेरित हो करके मन जो ब्रह्म के प्रति जाते हुए के समान प्रतिभासित होता है किन्तु वस्तुतः जाता नहीं है- '**यन्मनसा न मनुते**' इत्यादि श्रुति कहती है, एतादृश ब्रह्म उपास्य हैं। यदि मन वस्तुतः ब्रह्म को विषय नहीं करता है तब उपासक लोग ब्रह्म का ध्यान किस प्रकार करते हैं इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-'**अनेनेति**' सुप्रसन्न इस ब्रह्म से अनुग्रहीत होता हुआ मन इस ब्रह्म का स्मरण करता है विषय करता है वारंवार। उस मन का क्या स्वरूप है इस जिज्ञासा में कहते हैं-'**संकल्प**' इति। संकल्पजनक स्वभाव ही मन का स्वरूप है। मनोविशेषणीभूत संकल्प पद के वाद जो पुल्लिङ्ग है वह छान्दस है। यहां संकल्प शब्द नित्य पुल्लिङ्ग है। इससे यह सिद्ध होता है कि जिसके अनुग्रह करने से मन ब्रह्म के स्मरण करने में समर्थ होता है और जिसके अनुग्रह नहीं होने से ब्रह्म स्मरण करने में समर्थ नहीं होता है

वह ब्रह्म उपास्य है एतादृश आदेश स्पष्ट होता है ब्रह्म के अतिरेक विषय भिन्न में ब्रह्म के अनुग्रह एवं अननुग्रह से ही मन्त्र के स्मरणात्मक होने से वह स्मरण कारक होता है यह उपलक्षण से जानना चाहिये ॥५॥

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यम् । स य एतदेवं वेदाऽभि हैनं सर्व्वाणि भूतानि स वाञ्छन्ति ॥६॥

सब जगप्रसिद्ध सब ज़ग व्यापक परब्रह्म श्रीरामजी हैं उनकी तत् तथा वनके रूपमें उपासना करनी चाहिये क्योंकि वेही सर्वजनों से उपासनीय हैं। जो साधक उस ब्रह्म की तत् एवं वनके स्वरूप में उपासना करता है उसे सभी प्राणीवर्ग प्रियजन के रूपमें चाहते हैं ॥६॥

तद् उक्तं ब्रह्म । ह प्रसिद्धौ । तद्वनं नाम तद्वनमिति नामतया प्रसिद्धमित्यर्थः । तनोति व्याप्नोति चिदचिदात्मकं समस्तं जगत् इति तद् । तनु विस्तारे धातुः, अत् प्रत्ययः । वन्यते संभज्यते उपासकैरिति वनम् वन् सभक्तौ धातुः । अ प्रत्ययः । तच्च तद्वनं चेति तद्वनम् । कर्मधारयसमासः । सर्वत्रव्याप्तत्वात् वननभोग्यत्वाच्च तद्वनं ब्रह्म भवति, अतस्तद्वनमित्युपासितव्यम् । तदिति नाम्ना वनेति नाम्ना च उपासनीयम् ब्रह्म, सर्वान्तर्यामिनः संभजनीयस्य उपासनायोग्यत्वात् । एवमुपासकस्य फलमैहिकं प्रदर्शयति,

सः प्रसिद्धः योऽधिकारी एतद् ब्रह्म एवं तद्वनं नामेति रूपेण वेद उपास्ते एवं तद्वनं नामेत्येवरूपेण उपासकं सर्वाणि भूतानि सर्वे प्राणिनः संवाञ्छन्ति इच्छन्ति सर्वेषामीष्टो भवतीत्यर्थः ॥६॥

तत् पूर्वोक्त वह ब्रह्म। ह शब्द प्रसिद्धि अर्थ में है। वह ब्रह्म वन नाम से प्रसिद्ध है। समस्त चिदचिदात्मक जो जगत् उसे तद्वन कहते हैं। तनुविस्तारे धातु से अत् प्रत्यय हुआ है। वनित संभजित उपास्य हो उपासक से जो उसे वन कहते हैं तत् तथा वन को कर्मधारय समास है। सर्वत्र व्याप्त होने से उपास्य होने से तद्वन ब्रह्म कहे जाते हैं अतः तद्वनम् इस रूपसे उपासना करनी चाहिये। इसप्रकार तत् इस नाम से तथा वनम् इस नाम से ब्रह्म उपास्य है। एतादृश ब्रह्म के उपासक जो हैं उसके ऐहिक फल को बतलाते हैं **'स य'** इत्यादि। प्रसिद्ध जो वह अधिकारी इस ब्रह्म को तद्वनम् इस नामरूप से उपासना करता है, उस उपासक को प्रत्येक प्राणी चाहते हैं अर्थात् सबका वह इष्ट होता है ॥६॥

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् । ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति ॥७॥

हे आचार्यदेव ? उपनिषद्-रहस्य ब्रह्मविद्या सायुज्य मुक्ति का साधनभूत तत्त्व का हमें उपदेश करें ऐसी शिष्य की प्रार्थना सुनकर

आचार्यजी ने कहा तुम्हारे हेतु मैंने उपनिषद् का उपदेश कर दिया है शिष्य ? निश्चयपूर्वक तुम्हारे लिये ब्रह्मविद्या का उपदेश कर दिया है ॥७॥

पूर्वोक्तं सर्वं श्रुत्वा शिष्यः पुनराचार्यं पृच्छति-भो आचार्य उपनिषदं रहस्यं ब्रूहि उपदिश । तदा आचार्य उत्तरयति-उक्ता ते उपनिषत् । उपनिषत्प्रतिपाद्यं रहस्यं मया तुभ्यं सर्वमुक्तम् । तदेव दृढीकर्तुमाह आचार्यः ब्राह्मीं वाव ते उपनिषदमब्रूमेति । ते तुभ्यं ब्राह्मीं ब्रह्म विषयाम् उपनिषदम् उपनिषत्स्वरूपम् अब्रूम उक्तवा नस्मि । वाव एवार्थे । ब्रह्मेति होवाचेत्यादिना ब्रह्मणः प्रतिपादनं कृतमेव अत उपनिषत् प्रतिपाद्यं रहस्यं तुभ्य मुपदिष्टमेव नात्र किमप्यवशिष्टं पश्यामि यद्वदेयमिति भावः ॥७॥

पूर्वोक्त सब वचन को सुन करके शिष्य पुनः आचार्यजी से पूछता है-हे आचार्य देव ? उपनिषत् अर्थात् रहस्य का उपदेश मुझे दीजिए । तब आचार्य उत्तर देते हैं-'**उक्तेति**' तुमको मैंने उपनिषत् कह दिया अर्थात् उपनिषत् प्रतिपाद्यं रहस्य सब मैंने तुम्हें कह दिया है उसी वस्तु को दृढ करने के लिये आचार्य कहते हैं-'**ब्राह्मीं वाव**' इत्यादि । तुमको ब्रह्मविषयक उपनिषत् स्वरूप मैंने कह दिया है । वाव शब्द एव शब्द के अर्थ में है । '**ब्रह्मेति होवाच**' इत्यादि प्रकरण से ब्रह्म का प्रतिपादन

कर दिया है। अतः उपनिषत् प्रतिपाद्य जो रहस्य है उसका उपदेश तुमको कर दिया है। अब इस विषय में कुछ अवशिष्ट नहीं रह गया है जिसका उपदेश मैं तुमको करुं। पूर्व कथन से ही सब गतार्थ हो जाता है ॥७॥

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥८॥

उस रहस्यभूत ब्रह्मविद्या प्राप्ति हेतु तप दम एवं वर्ण तथा आश्रम के नियत कर्म आधार हैं। ऋक् वेद यजुर्वेद सामवेद तथा अथर्ववेद और उस वेद के सभी अङ्ग ब्रह्मविद्या के भी अङ्ग हैं तथा सत्यभाषण-सत्यव्यवहार ब्रह्मविद्या के उद्गम स्थान हैं ॥८॥

अधुना परमकृपालुः गुरुः शिष्याय ब्रह्मविद्यायाः कथं स्थितिर्भवति कथं च सा उत्पद्यते इति शिष्याय ब्रह्मविद्योपयोगितया उपदिशति-तस्यै ब्रह्मविद्यायै तपः कृच्छ्रचान्द्रायणादिकं शास्त्रपरामर्शाच्च। दमः इन्द्रियनिग्रहः कर्मवर्णाश्रमोचितक्रियानुष्ठानम् अग्निहोत्रादिकर्माचरणमिति यावत्। इति एतत्त्रयं प्रतिष्ठा ब्रह्मविद्यायाः स्थितिहेतुः। वेदाः ऋगादयः सर्वाङ्गानि शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष्छन्दोनिरुक्तरूपाणि सर्वाणि षडपि अङ्गानि सत्यं यथार्थमपीडाजनकं वचनम् एतत् त्रयम् आयतनम् स्थानम् ब्रह्मविद्याया उत्पत्तौ कारणमित्यर्थः। वेदादिपरिशीलनेन ब्रह्म

विद्योत्पद्यते उत्पन्ना च सा तपोदमविहितकर्मसेवयैव प्रतिष्ठतीति त्रिकद्वयमेतत् विद्याकामुकैराश्रयणीयमितिभावः ॥८॥

इसके बाद परमकृपालु गुरु शिष्य को ब्रह्मविद्या की स्थिति किस तरह होगी तथा ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति किस तरह होगी अतः ब्रह्मविद्योपयोगी साधन को बतलाने के लिये कहते हैं-'**तस्मै**' इत्यादि से। उस ब्रह्मविद्या के लिये तप कृच्छ्र चान्द्रा यण प्रभृतिक तथा शास्त्र विचार दम इन्द्रिय निग्रह कर्म वर्णा श्रमोचित क्रिया का अनुष्ठान अर्थात् अग्निहोत्रादिक कर्मों का सम्पादन करना ये तीनों प्रतिष्ठा हैं अर्थात् ब्रह्मविद्या की स्थिति के नियामक हैं। वेद ऋगादिक शिक्षाकल्प व्याकरण ज्योतिष छन्द निरुक्त लक्षण सब अङ्ग सत्य यथार्थ अपीडाजनक वचन ये तीनों आयतन स्थान हैं अर्थात् ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति में कारण हैं। वेदादि के परिशीलन से ब्रह्मविद्या उत्पन्न होती है। और वह उत्पन्न हो करके वह ब्रह्मविद्या तप दम विहित कर्म का आचरण से प्रतिष्ठित होती है इसलिये विद्याभिलाषी व्यक्ति के द्वारा दोनों त्रिक का अनुष्ठान अवश्य ही करना चाहिये ॥८॥

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥९॥

卐 इतिकेनोपनिषदश्चतुर्थःखण्डः ॥४॥ 卐

कोई भी साधना करनेवाला अधिकारी इस पूर्व वर्णित ब्रह्मविद्या को पूर्वोक्त रूपसे नियमतः जान लेता है वह सभी पापों को नाश करके सभी लोकों से श्रेष्ठ सभी परिधि से रहित सुखस्वरूप प्रकाशमय श्रीसाकेतस्थ सर्वेश्वर श्रीरामजी में प्रतिष्ठित हो जाता है यानी

सायुज्य मुक्ति प्राप्तकर आवागमन से रहित हो जाता है ।।९।।

इति आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामा
नन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यप्रणीता केनो
पनिषद् की लघुदीपिका संपूर्णा

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

केनोपनिषदं जानानस्य फलं वदति गुरुः-यो वा अधिकारी एतां ब्राह्मीमुपनिषदं एवम् स प्रतिष्ठां साय तनां ब्रह्मज्ञानहेतुभूतां वेद जानाति स उपनिषद् ज्ञानी पाप्मानमपहत्य सर्वाणि पापानि धर्माधर्मौ अवधूय अनन्ते कालपरिच्छेदरहिते अपारे च ज्येये ज्यायसि अतिशयेन श्रेष्ठे सर्वतो महत्तरे वा स्वर्गे दुःखलेशा संस्पृष्टे सुखे लोके साकेताख्ये श्रीरामचन्द्रब्रह्मधाम्नि यद्वा लोक्यतेऽनेनेति लोकः तस्मिन् प्रकाशरूपे श्रीरामाख्ये परब्रह्मणि प्रतितिष्ठति प्रतिष्ठां प्राप्नोति स भगवद्धामतः पुनर्नागच्छति 'न स पुनरावर्त्तते' इति-श्रुतेः 'यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धामपरमं ममेति' स्मृतेश्च भगवद्धामगतस्यापुनरावृत्यवगमात् इतिभावः। प्रतितिष्ठति इति पदस्यावृत्तिः समाप्तिद्योतनार्था ।।९।।

श्रीमज्जगद्गुरुरामानन्दाचार्यकृतानन्दभाष्यभूषिता
केनोपनिषत् समाप्ता

जो केनोपनिषत् को जानता है उसे जो फल प्राप्त होता है उस वस्तु को गुरु बतलाते हैं-'यो वा' इत्यादि से। जो अधिकारी इस ब्राह्मी उपनिषद् को तथा ब्रह्म ज्ञान के कारण लक्षण इस उपनिषद् को जानता है वह उपनिषद् ज्ञानवान् व्यक्ति-सब धर्मा धर्मरूप पाप को विनष्ट करके अनन्तकाल परिच्छेद रहित अपार अति शयेन श्रेष्ठ सुखास्पद अथवा सर्वा पेक्षया श्रेष्ठ दुःख लेश रहित सुखात्मक श्रीसाकेतलोक में जो कि श्रीरामचन्द्र परब्रह्म का धाम है अथवा प्रकाशात्मक श्रीरामरूप परब्रह्म में प्रतिष्ठित होता है प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है और वह पुनः भगवद्धाम से पुनः लौटता नहीं है। जहां जा करके पुनः आवृत्त नहीं होता है वह मेरा धाम है तथा **'न स पुनरावर्तते'** आदि श्रुति एवं स्मृति कहती है। भगवद्धाम प्राप्त व्यक्ति को अपुनरा वृत्तिक कहा गया है। द्विर्वचन समाप्ति बोधक है ॥९॥

इत्यानन्दभाश्यसिंहासनासीन जगद्गुरुश्रीरामानन्दा चार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यप्रणीतप्रकाशः

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

卐 ॐ 卐

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्र मथो बलमिन्द्रियाणि च। सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरण मस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥